श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

विवेक शिखा

वर्ष–१०   मई–१९९१   अंक–५

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी — उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप — रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय — छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा – छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु० प्रभाकर राव गंगणाम —(महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, झुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी, कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भृगुनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक मनित, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री सनत कुमार दुबे - सिवनी मालवा (म०प्र०)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी
८३. श्री चन्द्र मोहन—टुंडला (उ. प्र.)
८४. श्री बी. एल गुप्ता—भामवार (म. प्र.)
८५. डॉ. टी. जे. हेमनानी —नागपुर (महाराष्ट्र)
८६. डॉ. एस. एम. सिंह—इलाहाबाद
८७. श्री श्याम सुन्दर चमरिया—बम्बई
८८. श्री जयप्रकाश गुप्ता — परोना, सारण (बिहार)
८९. श्री अमरेश कल्ला — जयपुर, (राजस्थान)
९०. श्री प्रफुल्ल सुंगारे – पुणे (महाराष्ट्र)
९१. श्रीमती कमला घोष—इलाहाबाद
९२. श्री एम. डी. शर्मा — अहमदाबाद
९३. श्रीमती प्रभा भार्गव—बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री शशिकांत मिश्र—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री के० सी० सर्राफ—बम्बई
९६. श्री ए० के० चटर्जी, आइ. ए. एस.—पटना
९७. सचिव, थियोसोफिकल लॉज—छपरा (बिहार)
९८. श्री सुभाष वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
९९. श्री दिलीप देसाई, बरोदा (गुजरात)
१००. श्रीरामकृष्ण आश्रम—इन्दौर (म० प्र०)
१०१. सारदापीठ विद्यालय—इन्दौर (म० प्र०)
१०२. डॉ० ओमप्रकाश वर्मा—रायपुर (म० प्र०)
१०३. विवेकानन्द विद्यापीठ—भोपाल (म० प्र०)
१०४. रामकृष्ण मठ—जामतारा (बिहार)
१०५. श्री सुनील खण्डेलवाल—रायपुर (मध्य प्रदेश)
१०६ श्री बसन्त लाल गुप्ता—नागपुर (महाराष्ट्र)
१०७. श्री जयेश ब्रह्मभट्ट—पुणे (महाराष्ट्र)
१०८. श्री नरेन्द्र कुमार टाक — अजमेर (राजस्थान)
१०९. श्री महन्त युक्तिरामजी—जोधपुर (राजस्थान)
११०. श्री राय मनेन्द्र प्रसाद — जमशेदपुर (बिहार)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१० | १९९१—मई | अंक—५

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

जो लोग बिलकुल कुछ न कर सकें वे दोनों समय भक्तिपूर्वक दो बार प्रणाम करें। वे भी तो अन्तर्यामी हैं, वे समझते हैं कि ये क्या करते हैं। तुम्हें कितने ही काम हैं। तुम्हें पुकारने का समय नहीं, तो उन्हें आममुख्तारी दे दो; परन्तु अगर उन्हें पा न सके, उनके दर्शन न कर सके, तो कुछ न हुआ।

(२)

अहेतुकी भक्ति—तुम इसे अगर साध्य कर सको तो अच्छा हो। 'मुक्ति, मान, रुपया, रोग अच्छा होना, कुछ नहीं चाहता,—मैं बस तुम्हें चाहता हूँ।' इसे अहेतुकी भक्ति कहते हैं। बाबू के पास कितने ही लोग आते हैं—अनेक कामनाएँ करते हैं, परन्तु यदि कोई आदमी आता है जो कुछ नहीं चाहता, और केवल प्यार करने के लिए ही बाबू के पास आता है तो बाबू भी उसे प्यार करते हैं।

(३)

स्त्रियों के सम्बन्ध में खूब सावधान रहे बिना ब्रह्मज्ञान नहीं होता, इसीलिए गृहस्थी में उसकी प्राप्ति कठिन बात है। चाहे जितने बुद्धिमान क्यों न बनो, काजल की कोठरी में रहने से स्याही जरूर लग जायगी। युवतियों के साथ निष्काम मन में भी कामना की उत्पत्ति हो सकती है।

(४)

सत्य वचन के प्रति दृढ़ निष्ठा होनी चाहिए। सत्य को दृढ़ता से पकड़े रहने पर ईश्वर लाभ होता है।

श्रीरामकृष्ण प्रशस्तिः

—स्वामी विवेकानन्द

क्षीणाः स्म दीनाः सकरुणा जल्पन्ति मूढा जनाः
नास्तिक्यन्त्विदन्तु अहह देहात्मवादातुराः ।

प्राप्ताः स्म वीराः गतभयाः अभयं प्रतिष्ठां यद
आस्तिक्यन्त्विदन्तु चिनुमः रामकृष्णदासा वयम् ॥१॥

पीत्वा पीत्वा परमपीयूषं वीतसंसार रागाः
हित्वा हित्वा सकल कलहं प्रापिणीं स्वार्थसिद्धिम् ।
ध्यात्वा ध्यात्वा श्रीगुरुचरणं सर्वकल्याणरूपं
नत्वा नत्वा सकल भुवनं पातुमामन्त्रयामः ॥२॥

प्राप्तं यद्वै त्वनादिनिधनं वेदोदधिं मथित्वा ।
दत्तं यस्य प्रकरणे हरिहर ब्रह्मादिदेवैर्बलम् ॥३॥

पूर्णं यत्तु प्राणसारैर्भौम नारायणानाम्
रामकृष्णस्तनुं धत्ते तत्पूर्णपात्रमिदं भोः ॥

भावार्थ—जो लोग देह को आत्मा मानते हैं, वे ही करुण कण्ठ से कहते हैं—हम क्षीण हैं, हम दीन हैं। यह नास्तिक्य है। हमलोग जब कि अभयपद पर स्थित हैं तो हम भयरहित वीर क्यों न हों, यही आस्तिक्य है। हम रामकृष्ण के दास हैं।

संसार में आसक्ति से रहित होकर, सब कलहों की जड़ आसक्ति का त्याग करके, परम अमृत का पान करते हुए, सर्वकल्याणस्वरूप श्रीगुरु के चरणों का ध्यान कर, समस्त संसार को नतमस्तक होकर उस अमृत का पान करने के लिए बुला रहे हैं।

अनादि अनन्त वेद रूपी समुद्र का मन्थन करके जो कुछ मिला है, ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि देवताओं ने जिसमें अपनी शक्ति का नियोग किया है, जिसे पार्थिव नारायण कहना चाहिए अर्थात् जिसमें भगवदवतारों के प्राणों का सारपदार्थ है, श्रीरामकृष्ण अमृत के पूर्ण पात्र स्वरूप उसी देह को लेकर आये थे।

बुद्ध पूर्णिमा

स्वामी ब्रह्मप्रदानन्द
अनुवादक—डॉ० केदारनाथ लाभ

आज से प्रायः २५०० वर्ष पूर्व एक वैशाख की पूर्णिमा को, फूलों की सुगन्ध से प्रमुदित सुरम्य कानन लुम्बिनी के उद्यान में प्रस्फुटित पुष्पों के भार से झुके हुए एक शाल वृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था। वैशाखी पूर्णिमा में बुद्ध के जन्म के विषय में पण्डितों में मतभेद है। किसी किसी के मत से उनका जन्म आषाढ़ की पूर्णिमा को हुआ था। जो हो, संसार के लोगों ने वैशाख पूर्णिमा को ही बुद्ध की जन्म तिथि के रूप में स्वीकार कर लिया है। कारण शाल वृक्ष में फूल वैशाख महीने में ही खिलते हैं, आषाढ़ में नहीं। वैशाखी पूर्णिमा समग्र संसार में बुद्ध पूर्णिमा के नाम से परिचित है। चिरस्मरणीय है यह तिथि। तीन रूप में महिमामंडित है यह तिथि। इसी तिथि को भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था, उन्हें बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी और उनका महापरिनिर्वाण हुआ था। विश्व के इतिहास में ऐसा महिमान्वित कोई एक दिन विरल ही है। इसी वैशाख की पूर्णिमा को और भी पांच व्यक्तियों का जन्म हुआ था, जिनके साथ परवर्ती काल में बुद्ध का निकट सम्पर्क था। वे थे—उनकी पत्नी यशोधरा, सारथी छन्दक, शिष्य कालदयिन और आनन्द तथा उनके परम प्रिय अश्वकण्टक।

भगवान बुद्ध की जीवन-गाथा अपूर्व है। शान्तिपूर्ण राज्य, स्नेहमय पिता, रूप-गुणों में अतुलनीय युवती पत्नी, नवजात शिशु पुत्र और राजमहल में भोग-विलास के निरन्तर आयोजन। इसी वातावरण के बीच युवक सिद्धार्थ ने मनुष्य के दैनन्दिन जीवन की मूल समस्याओं के रहस्य का पता लगा लिया। जीवन के प्रत्येक स्तर पर रोग-शोक-जरा-मृत्यु का जो दुःख है, उस दुःख के सच्चे स्वरूप को उन्होंने देख लिया। राजपुत्र सिद्धार्थ के मन में यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि क्या सचमुच इस दुःख से छुटकारा नहीं है? दुःख है और दुःख का निवारण भी अवश्य है। किन्तु कैसे? उसी मुक्ति पथ के सन्धान में राज्य और राजसिंहासन, प्रियतमा पत्नी और नवजात पुत्र सब को पीछे छोड़कर २९ वर्ष की आयु में रात्रि के घने अंधकार में महाभिनिष्क्रमण किया।

फिर वैशाखी पूर्णिमा आयी। बुद्ध की आयु उस समय ३५ वर्ष की थी। सुदीर्घ कठोर साधना आज समाप्त होगी। गौतम निरंजना नदी में स्नान समाप्तकर बोधिवृक्ष के नीचे आकर बैठे। अपने विगत जीवन पर वे विचार करने लगे। उन्होंने देखा कि अब भी उनके मन में लालसा की रेखा बची हुई है, फिर भी वह क्षीण हो गयी है। तथापि उन्होंने उनके (लालसाओं के) स्वरूप को पहचान लिया है और उनका वेग पहले की भांति दुर्दमनीय नहीं है। मार के राज्य या माया के राज्य का वे अतिक्रमण करेंगे इसलिए मार भी सुसज्जित होकर आ गया है। शुरू हुआ उसका आक्रमण पर आक्रमण। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य। वे सब अपने बल-विक्रम का प्रभाव दिखाने लगे एवं उनके उद्भव के साथ ही उनका विनाश भी होने लगा। उसी समय गोपकन्या सुजाता वन-देवता को निवेदित करने के लिए एक बड़े कटोरे में सुस्वादु खीर लेकर आयी और उसने

देखा कि वृक्षमूल को अपनी दीप्ति से आलोकित करते हुए सिद्धार्थ बैठे हैं। सुजाता ने उन्हें वन देवता समझकर वह खीर भरा कटोरा उन्हें अर्पित कर दिया। बुद्ध ने उस खीर को ग्रहण किया। तदुपरान्त उन्होने एक अलौकिक दृश्य देखा। उनके पिता, माता, पत्नी और पुत्र आकर उन्हें अपने साथ लौट चलने का अनुनय पूर्वक प्रार्थना कर रहे हैं। उन्होंने समझ-लिया कि अब भी उनके भीतर वासना का बीज ममता की मूर्ति बनकर उन्हें प्रताड़ित कर रहा है। दृढ़ संकल्प लेकर वे पराज्ञान की प्राप्ति के लिए बैठ गये। सिद्धार्थ ने कठिन संकल्प किया— जब तक बोधि लाभ नहीं करूँगा तब तक अपने आसन से नहीं उठूँगा—

> इहासने शुष्यतु मे शरीरं
> त्वगस्थिमांसं प्रलयंच यातु।
> अप्राप्य बोधिं बहुकल्प दुर्लभां
> नैवासनात् कायमतश्चलिष्यते ॥

अर्थात्—इस आसन पर यदि मेरा शरीर सूख जायें, यदि मेरे शरीर के चर्म, अस्थि, मांस भी गल जायें तथापि जबतक बहुकल्प दुर्लभ बोधि की प्राप्ति मैं नहीं कर लेता हूँ तब तक मैं अपने आसन का परित्याग नहीं करूँगा।

गंभीर ध्यान में डूब गये सिद्धार्थ।

संध्या के पश्चात् आकाश में पूर्णिमा का चाँद उग आया। धीरे-धीरे अंधकार का राज्य समाप्त हुआ और गौतम के हृदय से भी अंधकार का पर्दा धीरे-धीरे सिमटने लगा। कहीं भी वासना का बीज नहीं रहा। अंधकार समूल नष्ट हो गया। ज्ञान की प्राप्ति हुई। उन्होंने बोधि प्राप्ति की। मुक्तात्मा महात्मागण हर्षित हो गये, देवतागण उनका यशोगान करने लगे और पृथ्वी पुलकित हो उठी। परम आनन्दपूर्वक सिद्धार्थ ज्ञान के सागर में अवगाहन करने लगे। वे बुद्ध हो गये।

निर्वाण प्राप्ति के उपरान्त भगवान बुद्ध ने कहा कि मैं भगवान नहीं हूँ न ईश्वर प्रेरित प्राणी ही हूँ। मैं मानव की सन्तान हूँ। मैंने साधना के द्वारा जन्म और मृत्यु के रहस्य को जान लिया है। मैंने जान लिया है कि दुःख क्या है, दुःख के कारण को जान लिया है, और उस कारण को दूर करने का उपाय भी जान लिया है। उन्होंने जीवन के पथ पर, जीवन के प्रसार के पथ पर, निर्मल विचार-बुद्धि के पथ पर चलने के लिए सबका आह्वान किया। उन्होंने चार आर्यसत्य की बात कही। वे चार आर्य सत्य हैं—

(क) संसार दुःख का आगार है। जन्म में दुःख है, रोग में दुःख है, बुढ़ापा दुःखमय है, अप्रिय वस्तु के संयोग में दुःख है, प्रिय के वियोग में दुःख है, और मृत्यु तो परम दुख है।

(ख) विषय-वासना की तृष्णा दुःख का आदि कारण है।

(ग) आसक्ति के त्याग से ही दुःख से छुटकारा मिलता है।

(घ) आसक्ति-त्याग के आठ उपाय हैं—

(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वाक्य, (४) सम्यक् कर्म, (५) सम्यक् आजीव या जीविका, (६) सम्यक् व्यायाम या संयम, (७) सम्यक् स्मृति या धारणा, तथा (८) सम्यक् समाधि। इस अष्टांग योग में सम्यक् रूप से अभ्यस्त होने पर काम-क्रोध-लोभ के संयोग से उत्पन्न समस्त दुःख दूर होंगे। वस्तुतः काम-क्रोध-लोभ इन तीनों के संयोग से ही मनुष्य के समस्त दुःख उत्पन्न होते हैं, अतएव इन विविध दुःखों को पार कर जाने पर ही मनुष्य परम शान्ति अर्थात् निर्वाण प्राप्त करता है। इसी से वैशाख की पूर्णिमा भगवान बुद्ध की आत्मा के अभ्युदय की तिथि हो गयी।

प्रेम, मैत्री और करुणा के मूर्त प्रतीक हैं बुद्ध। एक साधारण मेमने की जीवन-रक्षा के लिए वे अपने प्राणों की आहुति देना चाहते थे। यह कथा यद्यपि सभी को मालूम है तथापि मैं फिर से कहता

है। मगध के पथ-मार्गों से बुद्ध चल रहे हैं। तभी सुनते हैं कि मगध की राजधानी में विराट् उत्सव हो रहा है। उत्सव स्थल पर उपस्थित हो बुद्ध ने देखा कि अनगिनत मेमनों को वहाँ बाँधकर रखा गया है। पुत्रहीन महाराज बिम्बसार सहस्र पशु बलि देकर पुत्रेष्टि यज्ञ कर रहे हैं। बुद्धदेव के प्राण रो पड़े। वे महाराज बिम्बसार के पास गये। कातर भाव से निवेदन करने लगे।"

"..... मैंने किया है कठोर तप
यदि उससे हुआ है, कुछ धर्मोपार्जन
तो करता हूँ राजन उसे तुम्हें मैं अर्पण—
तुम्हें हो सुपुत्र।
यदि तुमने किया है कोई पाप
जिसके कारण बिना पुत्र तुम पाते हो संताप—
स्वेच्छा से वह पाप तुम्हारा मैं कर लूँगा ग्रहण
राजा, बलि पर आज चढ़ा दो मेरा ही जीवन-
किन्तु निराश्रित छागलों को प्राण दान दे दो तुम।"

बुद्ध को कोई अवतार, कोई मानव-शिक्षक और कोई लोकगुरु कहते हैं। फिर कोई उन्हें मुक्ति के मंत्रदाता भी कहते हैं। वे यह सब हैं। किन्तु सब से पहले वे इतिहास के सर्वश्रेष्ठ पुरुष एवं विश्वमानव के इतिहास में चिर उज्ज्वल आलोक वर्तिका हैं। बौद्ध दर्शन का आरम्भ दुःख से होने पर भी बुद्ध दुःखवादी नहीं थे। सामान्य मनुष्य अपने जीवन से दुःख को मिटा नहीं पाता। तथापि दुःख के पार जाना ही आध्यात्मिकता का अभियान है, आध्यात्मिकता का लक्ष्य है। सामान्य साधक के अनिवार्य दुःखानुभव से ही आध्यात्मिक यात्रा की शुरुआत तथा निर्वाण में उस यात्रा की परिसमाप्ति है।

फिर आयी वैशाखी पूर्णिमा। भगवान बुद्धदेव की उम्र उस समय अस्सी वर्ष की थी। शाल वृक्ष में फूल खिले। भगवान बुद्ध ने यह जानकर कि उनके शरीर त्याग का समय आ गया है, शाल वृक्ष के मूल में शय्या लगाने के लिए आनन्द से कहा। अपने परम प्रिय के वियोग का समय निकट जानकर आनन्द रोने लगे। बुद्धदेव ने उन्हें शोक नहीं करने को कहा। सभी समागत लोगों को अंतिम उपदेश देकर समाधि योग के द्वारा अविद्या, तृष्णा, आसक्ति और दुःख के राज्य के पार चले गये बुद्धदेव। आकाश में चन्द्रमा दुःख से म्लान हो गया, पृथ्वी निस्तब्ध हो गयी, भिक्षुगण मौन हो गये, और सबके प्रिय महानिर्वाण प्राप्त भगवान बुद्धदेव का मुखमंडल ज्योति से उद्भासित हो उठा। सबने एक स्वर से महोच्चार किया—"बुद्धं शरणं गच्छामि"

[उद्‌बोधन, अप्रैल १९९१ अंक से साभार सं.]

सुखा बुद्धानं उपपादो सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा संघस्स सामग्गी समग्गानं तपो सुखो॥
—(धम्मपद : बुद्धवग्ग : १६)

अर्थात्—लोक में बुद्धों का उत्पन्न होना परम सुख है। बुद्ध होकर धर्मोपदेश करना सब लोगों के लिए सुखदायी है। पवित्र आचार वाले भिक्षुगणों का एकत्र होना परम सुख है और एकत्र होकर तपस्याचरण करना अति सुखदायक है।

बोधिवृक्ष के तले

—स्वामी पूर्णात्मानन्द

[स्वामी पूर्णात्मानन्द बंगला की विख्यात पत्रिका उद्‌बोधन के सम्पादक हैं। इसी पत्रिका के अप्रैल १९९१ के अंक में प्रकाशित इनकी कविता का हिन्दी रूपान्तर डॉ० केदारनाथ लाभ ने किया है। - स०]

उस दिन पृथ्वी का वर्ण था धूसर,
मानव उद्‌भ्रान्त, अधीर, असंयमी;
निर्बल पशुगण हत्यारों के भय से हो गये थे -
विवर्ण, पीले
यज्ञ की बलि-वेदी पर पशु नहीं
बलिपद्रत्त थी मनुष्य की मनुष्यता।
स्वार्थपरता, लोभ, हिंसा,
यन्त्र-मन्त्र, याग-यज्ञ, तर्क-विचार,
शोषण, उत्पीड़न और भ्रष्टाचार से
वायु हो गयी थी बोझिल,
निर्मल, निर्बाध, उदार, आलोक का पथ
हो गया था रुद्ध।
अमावस की घनी अँधेरी रात
मानो प्रभात होना चाहता ही नहीं।
हुआ, अंत में सूर्योदय हुआ,
एक नूतन दिवस का आविर्भाव हुआ पृथ्वी पर।
आयी वैशाख-पूर्णिमा की वह सम्मोहक रात्रि।
मानो पृथ्वी पर कोई ध्रुवतारा
या पूर्णिमा का चन्द्रमा हो उतर आया।
नवजात शिशु का नामकरण हुआ सिद्धार्थ।
दिन वीते, मास बीते,
वर्ष पर वर्ष वीते।
फिर आया वह माहेन्द्र क्षण,
उस दिन भी थी वैशाखी पूर्णिमा
ज्योतिर्मयी उज्ज्वल रात्रि के मौन प्रहर में
निरंजना नदी-तीर पर बोधि वृक्ष के तले
समाधिमग्न निश्चल सिद्धार्थ
प्रज्ञा की दीप्ति से उद्‌भासित हो उठे —
चारों ओर उनके दीपित हो गया एक ज्योति-मंडल।
उन्होंने अपनी आँखें मलीं—धीरे, अति धीरे;
स्फुरित हुए उनके अधरोष्ठ;
"मैं हूँ बुद्ध, मैं तथागत हूँ।
जगत को दूँगा मैं नव जीवन का सन्धान।"
आसन से अपने उठे बुद्ध।
दिव्य उपलब्धि की उन्मद प्रेरणा से
सात दिन, सात रात
चलते रहे पाँव-पैदल - अविराम, अविश्राम।
जितनी बार उनके चरण भूमि स्पर्श करते।
धरती के वृक्ष पर खिल उठते उतनी बार
गोल-गोल एक-एक श्वेत कमल।
बीत गयी सप्तम रात्रि।
पूरब का आकाश लाल हो उठा।
उदित सूर्य की किरणें
चू पड़ीं बुद्ध के ललाट पर।
आगे चल पड़े तथागत
गाँव पर गाँव, नगर पर नगर—
निःशंक, अकम्पित, अनन्य शरण।
अपराजेय विश्वास से दीप्त, अनिकेत भ्रमणशील संन्यासी
चलते हैं क्लान्तिहीन पथ पर
अपने पाँवों से चूर-चूर करते हुए
शठता और भ्रष्टाचार के दुर्ग पर दुर्ग को।
वोधिवृक्ष के तले जिस सत्य का सन्धान
उन्होंने किया था
उसे पहुँचा दिया मनुष्य के घर-घर, द्वार-द्वार।
विश्व को दिया उन्होंने जागरण का मंत्र
आत्मदीप की जीवनदायी वाणी।
पृथ्वी का रंग पुनः हरा हुआ
मानव के मुखमंडल पर फैली विशुद्ध रक्त की आभा,
पशुबलि के रक्त-प्रवाह पर विराम लगा।
नव-जीवन की प्रतिबद्धता से
पृथ्वी पुनः नये रूप से रहने योग्य हो गयी। ❁

अध्यात्म के दीप में कारज के ज्योतिपुंज :
रामकृष्ण-विवेकानन्द

डॉ० ओम प्रकाश शरण
रांची

भारत में गुरु-शिष्य संबंध की एक विलक्षण परम्परा रही है। सच्चा गुरु वही है जो क्षण भर में ही मानो हजारों विभिन्न व्यक्तियों में अपने को परिणत कर सके। सच्चा गुरु वही है जो शिष्य को सिखाने के लिए शिष्य की ही दृष्टि से देख सके, उसी के कानों से सुन सके तथा उसी के मस्तिष्क से समझ सके। ऐसा ही गुरु शिक्षा दे सकता है – अन्य सभी निषेधक, निरुत्साहक तथा संहारक गुरु हैं जो कभी भलाई नहीं कर सकते। लेकिन एक गुरु के लिए शिष्य की उपलब्धि आसान नहीं। संतप्रवर देवमानव श्रीरामकृष्ण परमहंस भी बरसों योग्य शिष्य पाने के लिए रो-रोकर प्रार्थना करते रहे तब कहीं जाकर उन्हें शिष्य के रूप में विवेकानन्द मिले।

सप्तर्षि मंडल के सितारे

माँ काली का साक्षात् दर्शन करने वाले श्रीरामकृष्ण ने देखा था नभ मंडल में सात ऋषि ध्यान में निमग्न हैं। उनमें से एक ऋषि के पास न जाने कहाँ से एक नन्हा सा बालक दौड़कर पहुँच गया और बड़े प्यार से ऋषि के गले में अपनी दोनों बाहें डालकर लिपट गया है। फिर उसने बड़े प्यार से ऋषि को बार-बार पुकारा। जब ऋषि ने अपनी आंखें खोली तो बालक बोला—मैं तो जा रहा हूँ, तुम्हें भी मेरे साथ जाना होगा।' ऋषि ने अपने प्रसन्न चेहरे से बता दिया कि वे बालक के साथ जाने को राजी हैं। श्रीरामकृष्ण ने इस दिव्य अनुभूति का मर्म समझाते हुए बतलाया कि उसी ऋषि ने बाद में मानव रूप में शरीर धारण किया जिन्हें संसार ने विवेकानन्द के रूप में जाना। और वह नन्हा बालक कौन था? वह थे स्वयं श्रीरामकृष्ण जिन्हें जगन्मयी मां से उन्हें पाने के लिए रो-रोकर प्रार्थना करनी पड़ी। एक गुरु के लिए उत्तम शिष्य इतना ही मँहगा और महत्वपूर्ण होता है।

आध्यात्मिक पिपासा

आधुनिक भारत के यशस्वी पुत्रों की दीप्तिमय आकाश गंगा में विलक्षण स्थान रखने वाले और सुप्त भारत के प्राण में नव संचार करने वाले स्वामी विवेकानन्द बचपन से ही असाधारण प्रतिभा के पुंज थे। माता-पिता ने अपूर्व मेधा वाले अपने इस पुत्र का नाम रखा था—नरेन्द्र। तेजस्वी आकृति एवं महामेधावी मस्तिष्क वाले नरेन्द्र को किसी चीज को जानने की इच्छा होने पर उसे खूब अच्छी तरह जाने बिना शांति नहीं मिलती थी। उसमें प्रारंभ से ही आध्यात्मिक भूख बड़ी प्रबल थी। लेकिन उसका जिज्ञासु और तार्किक मन अपनी आध्यात्मिक शंका का समाधान नहीं पा रहा था। विश्वविद्यालय की पोथियां उसकी समस्या हल न कर सकीं। कोरी श्रद्धा और विश्वास के आधार पर ही वह किसी मत को स्वीकार करने के लिए राजी नहीं थे। वह सोचते यदि ईश्वर है तो उसके दर्शन होने चाहिए और यदि आत्मा है तो उसकी अनुभूति होनी चाहिए। बस, उन्होंने विविध धर्मों का अध्ययन प्रारंभ कर दिया। तत्व दर्शन की सारी पोथियाँ उलट-पलट कर देख डाली। बड़े-बड़े विद्वानों एवं संतों के

समक्ष उसकी चिर पिपासु जिज्ञासा होती - क्या आपने ईश्वर को देखा है ? और इसके जो उत्तर मिलते उससे उनकी आध्यात्मिक पिपासा शांत नहीं होती। नरेन्द्र तो एक ऐसे व्यक्ति की खोज में थे जो भगवान का दर्शन कर चुके हों। पुरानी कहावत है कि जो काशी गया है, जोकाशी देख चुका है वही तो काशी के बारे में ठीक-ठीक बता सकता है और वहाँ का दर्शन करा सकता है।

गुरु शिष्य मिलन

अंततः संशय के दलदल में फंसे नरेन्द्र की भेंट श्रीरामकृष्ण परमहंस से हुई। उनके समक्ष भी वही जिज्ञासा और परमहंस देव का सीधा उत्तर—हाँ, क्यों नहीं ? मैंने ईश्वर को वैसा ही देखा है जैसा मैं तुम्हें अपने सामने देख रहा हूँ, बल्कि उससे भी अच्छी तरह। इतना ही नहीं, यदि तुम चाहो तो तुम्हें भी दिखा सकता हूँ।' नरेन्द्र के पास कहने को कुछ भी शेष न रहा। आँखें फाड़कर देखते रह गये। यही तो समाधाम था उनकी जिज्ञासा का। नरेन्द्र ने परमहंस में अपना गुरु पा लिया और गुरु ने अपना शिष्य जिसकी उन्हें तीव्र प्रतीक्षा थी। नरेन्द्र का जीवन पथ अकस्मात ही आलोकित हो गया, अवरुद्ध द्वार खुल गये।

श्रीरामकृष्ण से नरेन्द्र की पहली मुलाकात अपने पड़ोस में ही हुई थी जहाँ नरेन्द्र को गाने के लिये निमंत्रित किया गया था। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र के संगीत को सुनकर बड़े आनन्दित हुए थे। इस प्रथम साक्षात्कार में ही गुरु ने अपने सुयोग्य पात्र को पहचान लिया था और वे उसे दक्षिणेश्वर आने का निमंत्रण दे गये। इस प्रथम मिलन में नरेन्द्र इस 'पागल' अशिक्षित ब्राह्मण पुजारी के प्रति तनिक भी आकर्षित न हुए। परन्तु लाख अनिच्छा के बावजूद उनके प्रति एक गुप्त आकर्षण से बंधे रहे।

रामकृष्ण का सीधा उत्तर

नरेन्द्र उस समय जनरल एसेम्बली इंस्टीट्यूट में पढ़ रहे थे। एक दिन प्रिंसिपल हेस्टी जब कक्षा में वर्ड्सवर्थ की एक कविता पढ़ा रहे थे तो कवि की भावावस्था को समझाने के सिलसिले में कहा—'मैंने देखा है इस प्रकार का अनुभव केवल एक व्यक्ति को हुआ है। वे हैं दक्षिणेश्वर के श्रीरामकृष्ण परमहंस। तुमलोग इस शब्द का अर्थ तभी समझ सकते हो जब वहाँ जाओगे और उन्हें खुद देखोगे।" अपने प्रिंसिपल के मुँह से श्रीरामकृष्ण का जिक्र सुनने पर उस 'पागल' ब्राह्मण के प्रति गुप्त आकर्षण से बंधे नरेन्द्र को अचानक उनका स्मरण हुआ और वे खोये-खोये दक्षिणेश्वर पहुँच गये - विचारों में मग्न, देह की ओर से बेसुध और वस्त्रों के प्रति लापरवाह। कलकत्ते के भौतिक वातावरण से भाग निकल आये नरेन्द्र ने अन्तर्मुखीन मन की सूचना देती आँखों के साथ श्रीरामकृष्ण के कमरे में प्रविष्ट होते ही हठात प्रश्न किया - "क्या आपने ईश्वर को देखा है" और फिर श्रीरामकृष्ण का सीधा उत्तर। नरेन्द्र अचरज में पड़ गये। जिस प्रकार अर्जुन के विषाद और संशय को भगवान श्रीकृष्ण ने अमृतवाणी और विराट दर्शन से सदा के लिए शांत कर दिया था, उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण की वाणी और व्यक्तित्व ने नरेन्द्र का संशय और विषाद हर लिया। नरेन्द्र ने श्रीरामकृष्ण के अनुरोध पर दो बंगला गीत गाये और श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गये। जब समाधि टूटी तो उनकी आँखों से आनन्द के आँसू झरने लगे, मानो बहुत दिनों से बिछुड़े प्रियजन से अचानक मुलाकात हो गयी हो। सिसकते हुए श्रीरामकृष्ण ने बड़ी मार्मिकता के साथ बताया कि वे किस प्रकार नरेन्द्र की बरसे से बाट जोह रहे थे। उन्होंने नरेन्द्र से पुनः दक्षिणेश्वर आने का वचन लिया। नरेन्द्र समझ नहीं पाये कि श्रीरामकृष्ण की उपस्थिति में उन्होंने एक अद्भुत आनन्द का जो अनुभव किया वह कैसे हुआ। वार्तालाप के दौरान श्रीरामकृष्ण ने कहा, "ईश्वर को देखा जा सकता है। मनुष्य उन्हें देख सकता है। और उनसे बातें कर सकता

है, जैसे मैं तुमसे बात कर रहा हूँ। परन्तु भला कौन इसकी परवाह करता है?" उनके शब्दों की सच्चाई ने नरेन्द्र को श्रीरामकृष्ण पर विश्वास करने को विवश कर दिया। नरेन्द्र श्रीरामकृष्ण की ओर खिंचते चले गये।

गुरु स्पर्श से अभिनव अनुभूति

लगभग एक माह के बाद जब नरेन्द्रनाथ पुनः दक्षिणेश्वर आये तो उन्हें और भी विचित्र अनुभव हुआ। श्रीरामकृष्ण ने अर्द्धबाह्य दशा में बड़े स्नेह से नरेन्द्र का स्पर्श किया। नरेन्द्र बाह्य संसार का ज्ञान खो बैठे। उन्होंने बाद में इस घटना का वर्णन करते हुए कहा था, "उनके स्पर्श ने तत्क्षण मेरे भीतर एक अभिनव अनुभूति को जन्म दिया। अपनी खुली आंखों से मैंने देखा कि कमरे की दीवारें और सारी चीजें जोरों से चक्कर मारती हुई शून्य में विलीन हो गयीं और सारा विश्व मेरे अहं को लेकर एक रहस्यमय सर्वव्यापी शून्यता में लीन होने ही जा रहा है। मैं बुरी तरह डर गया और सोचा कि मैं, बस, अब मरने ही जा रहा हूँ। मैं अपने को न रोक सका और चिल्ला उठा, 'अरे, यह आप मेरे साथ क्या कर रहे हैं? घर में मेरे माता-पिता जो हैं।' यह सुनकर वे जोरों से हंसे और मेरी छाती को सहलाते हुए बोले ठीक है, अभी रहने दो, समय पर सब हो जायेगा। आश्चर्य, ज्योंही उन्होंने यह कहा त्योंही मेरा वह बिचित्र अनुभव गायब हो गया। मैं फिर अपने में आ गया और देखा कि कमरे के भीतर और बाहर सब कुछ वैसा ही है जैसा कि पहले था।"

नरेन्द्र के आन्तरिक जीवन का अध्ययन

इस घटना से नरेन्द्र के तार्किक मन और अहंकार पर आघात लगा कि वह यथार्थ वस्तुस्थिति को न पहचान सके। वे यह नहीं समझ पाये कि कोई केवल अपने स्पर्श से उनके मन को इस प्रकार कैसे आंदोलित कर सकता है? श्रीरामकृष्ण के अद्भुत व्यक्तित्व ने उन्हें मोह लिया था। नरेन्द्र को सारी बातें पहेली जैसी लगीं। उन्हें मालूम न था कि इस बीच क्या हो गया। इस अवधि का उल्लेख करते हुए श्रीरामकृष्ण ने बाद में कहा था कि तब उन्होंने नरेन के आंतरिक जीवन का अध्ययन किया था और उनकी महती संभावनाओं को देख लिया था। उस अध्ययन ने उनकी उन धारणाओं की पुष्टि की जो उन्होंने अपने इस भावी शिष्य के प्रति बना रखी थीं। नरेन्द्र को अब पूरा विश्वास हो गया था कि श्रीरामकृष्ण के माध्यम से एक विलक्षण शक्ति क्रियाशील है। लेकिन उनका तार्किक मन उन्हें गुरु के रूप में स्वीकार करने के लिये अभी भी पूरी तरह तैयार नहीं था। यद्यपि श्रीरामकृष्ण के प्रति नरेन्द्र में असीम श्रद्धा उमड़ पड़ी थी फिर भी वे श्रीरामकृष्ण की किसी बात को अपने अनुभव या तर्क की कसौटी पर परखे बिना स्वीकार करने के लिए राजी नहीं थे। कभी-कभी क्षुब्ध होकर श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र से कहते, "जब तू मेरी बातों में विश्वास नहीं करता तो मेरे पास आता ही क्यों है? नरेन्द्र उत्तर देते "चूँकि मैं आपको प्यार करता हूँ, इसका यह मतलब नहीं कि बिना सोचे-विचारे मैं आपकी बातों को मान लूं।" श्रीरामकृष्ण मन ही मन नरेन्द्र की बौद्धिक निष्ठा से आनन्दित ही होते और नरेन्द्र मन ही मन सोचते-यही वह गुरु है जिसकी मुझे तलाश थी। लेकिन नरेन्द्र का तो यह स्वभाव है कि वह बिना परखे कुछ नहीं मानेंगे अतएव श्रीरामकृष्ण को गुरु मान लेने पर भी उनकी किसी बात को अच्छी तरह परखे बिना उन्होंने नहीं माना।

रामकृष्ण की परीक्षा

श्रीरामकृष्ण ने बताया था कि वे पैसे को छू नहीं सकते। नरेन्द्र को इससे अचरज हुआ। एक दिन जब कोई भी कमरे में नहीं था, नरेन्द्र ने चुपके से एक चाँदी का सिक्का श्रीरामकृष्ण के आसन के नीचे रख दिया। जब श्रीरामकृष्ण आये, आसन पर बैठते ही उछल पड़े, जैसे बिच्छू ने डंक मार

दिया हो। आसन झाड़ा गया और उसके नीचे से सिक्का मिला। इस बीच नरेन्द्र चुपचाप एक कोने में खड़े रहे। श्रीरामकृष्ण को मालूम हो गया कि यह नरेन ने ही किया है, फिर भी वे अत्यंत प्रसन्न हुए।

इस प्रकार लगातार छह वर्षों तक विलक्षण गुरु की ज्ञान प्रभा, आध्यात्मिक तेज और दिव्य कृपा से असाधारण शिष्य के अन्तर्मन की गुत्थियां सुलझने लगीं, तर्क का स्थान श्रद्धा और विश्वास ने लिया और वह चिर पिपासु अध्यात्मिक रस से सराबोर होकर तृप्त हुआ। उन्होंने स्वयं को संपूर्ण रूप से श्रीरामकृष्ण देव को समर्पित कर दिया और कठोर साधना में लग गये। गुरु कृपा से वे शीघ्र ही निर्विकल्प समाधि की उस ऊँचाई तक पहुँच गये जहाँ कोई विरले ही पहुँचते हैं। नरेन्द्र का व्यक्तिगत आध्यात्मिक लक्ष्य पूरा हुआ।

कारज की ज्योति

किन्तु वह विलक्षण गुरु तो अपने असाधारण शिष्य से कुछ और ही आशा लगाये बैठे थे। वह कहा करते थे—साधारण लोग जगत को मार्ग दिखाने का भार लेते हुए भय खाते हैं। एक मामूली सा तिनका जैसे-तैसे स्वयं तो तैर सकता है किन्तु एक छोटी सी चिड़िया भी यदि उस पर बैठ जाय तो वह तुरत ही डूब जाता है। परन्तु नरेन्द्र की बात और है। वह गंगा के वक्षस्थल पर बाढ़ के समय तैरते उन विशाल वृक्षों के तनों जैसा है जो अपने ऊपर जाने कितने असहाय प्राणियों को लिये रहता है। इसलिए एक बार जब नरेन्द्र ने अपने गुरुदेव के समक्ष शुकदेव की भाँति सदा निर्विकल्प समाधि में डूबे रहने की अभिलाषा व्यक्त की तो श्रीरामकृष्ण ने उन्हें फटकारते हुए कहा कि 'छिः, छिः नरेन। मैं सोचता था कि तुम महान वटवृक्ष के समान होगे जिसकी छाँह में हजारों थके मांदे प्राणी आकर शरण लेंगे। किन्तु इसके विपरीत तुम एक स्वार्थी की तरह केवल निजी हित साधन में लगे रहना चाहते हो।"

"ज्ञानेर पर विज्ञान"

श्रीरामकृष्ण इससे भी ऊँची अवस्था में विश्वास करते थे—छत पर जाकर नीचे उतर आना और सभी में ब्रह्म का दर्शन करना। आचार्य शंकर के अद्वैत दर्शन में ब्रह्म ज्ञान को अंतिम अवस्था कहा गया और पतंजलि ने निर्विकल्प समाधि को अध्यात्मिक उपलब्धि की इतिश्री माना। किन्तु श्रीरामकृष्ण ने कहा—"ज्ञानेर पर विज्ञान" अर्थात् ज्ञान ही अंतिम अवस्था नहीं है, इसके आगे भी एक अवस्था है वह है विज्ञान। ब्रह्मानुभूति ही ज्ञान है। किन्तु वहीं रुकना नहीं है। इसके बाद उसका लोकमंगल के लिए उपयोग करना विज्ञान है। श्रीरामकृष्ण कहा करते—एक आदमी सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़कर दीवार के उस पार पहुँचा। वहाँ उसने महल के नीचे झाँककर देखा कि महल में नाच-गान हो रहा है। रस और आनन्द की वर्षा हो रही है। वह आनन्दित होकर नीचे कूद गया। यह ज्ञान है। दूसरा आदमी भी दीवार पर जाता है और मनोरम दृश्य देखकर छलांग लगा लेता है। किन्तु एक तीसरा व्यक्ति ऐसा है जो दीवार पर जाता है, नीचे के सम्मोहक दृश्य का आनन्द लेता है परन्तु स्वयं उसमें सम्मिलित हो जाने के लिये नीचे कूद नहीं जाता है। वह दीवार से फिर इस पार नीचे उतरता है और लोगों को अपने अनुभव के आधार पर बताता है कि देखो, दीवार के उस पार आनन्द की वर्षा हो रही है। जाओ तुम सब भी वहाँ जाकर उस परम आनन्द का रसपान करो। वह दूसरों को अपने आनन्द का भागीदार बनाने की चेष्टा करता है। यही विज्ञान है।

गुरुदेव के मुख से निकले इन अद्‌भुत वचनों में शिष्य को अनोखा प्रकाश मिला।

शिव भाव से जीव सेवा

सन् १८८४ के किसी समय एक दिन श्रीराम-कृष्ण दक्षिणेश्वर स्थित अपने कमरे में शिष्यों से घिरे बैठे थे। बातचीत के क्रम में वैष्णव धर्म का प्रसंग उठा। श्रीरामकृष्ण ने शिष्यों के समक्ष इस धर्म का सार प्रस्तुत करते हुए कहा—"यह धर्म तीन बातों के अभ्यास पर बल देता है—भगवत् नाम में रुचि, वैष्णव सेवा और जीव दया।" उनके मुख से मुश्किल से ये शब्द निकले ही थे कि वह समाधि में चले गये। कुछ समय बाद अर्द्धबाह्य अवस्था में आने पर अपने आपसे कहने लगे--"जीवों पर दया। जीवों पर दया। अरे मूर्ख धरती पर रेंगने वाला एक तुच्छ कीड़ा तू। तू दूसरों पर दया करेगा? तू दया करने वाला कौन होता है? नहीं, ऐसा नहीं। सेवा, सेवा—शिव भाव से जीव सेवा।" वहां उप-स्थित नरेन्द्र ने तत्क्षण गुरु के वचनों का मर्म पकड़ लिया। जब नरेन्द्र कमरे से बाहर आये तो उन्होंने दूसरों से कहा "गुरुदेव के इन अद्भुत वचनों में आज मुझे कैसी रोशनी मिली है! उन्होंने कितनी सुन्दरता के साथ भक्ति के आदर्श को वेदान्त के ज्ञान के साथ समन्वित किया। इन ज्ञानपूर्ण वचनों से मैंने समझा है कि समाज से दूर रहने वाले ऋषि और तपस्वी वेदांत के जिस आदर्श को अपने जीवन में उतारते हैं उसका व्यवहार घर में रहकर भी हो सकता है, उसे जीवन की दैनन्दिन क्रियाओं में भी उतारा जा सकता है…। यदि भगवान की इच्छा हुई तो वह दिन शीघ्र आयेगा जब मैं इस उदात्त सत्य की घोषणा करूंगा। मैं इसे विद्वान और मूर्ख, धनी और निर्धन, ब्राह्मण और चाण्डाल सभी की संपत्ति बना दूंगा।

अखंड दीप शिखा

और समय ने देखा नरेन्द्र की यह उत्कट अभिलाषा अक्षरशः सत्य हुई। अपने गुरु की इह-लीला समाप्त होने के बाद नरेन्द्र, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द बने भारत भ्रमण पर निकल पड़े। चार वर्षों तक देश भ्रमण के दौरान उन्हें एक ओर विलासितापूर्ण, वैभव देखने को मिला तो दूसरी ओर दरिद्रता, दासता और दीनता से कराहती भारतमाता की करोड़ों संतान। भारत की विपन्नता देखकर स्वामीजी का हृदय रो उठा। गुरु की वाणी कानों में गूंज उठी और होठों से निकला महामंत्र---"मूर्ख देवो भव, दरिद्र देवो भव, रोगी देवो भव।" उन्होंने मानवता के समक्ष ज्ञान पर आधारित सेवा के अपूर्व आदर्श-आत्मनो मोक्षार्थ जगद्धिताय च—की घोषणा की जो उन्हें पवित्र विरासत के रूप में दक्षिणेश्वर की शांतिमय तपोभूमि में अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण परमहंस से प्राप्त हुई थी। फिर शुरू हुआ विराट कर्मयज्ञ। रामकृष्ण की वाणी से विश्व को आलोड़ित, स्पंदित और परितृप्त कर देने के लिए रामकृष्ण संघ की स्थापना की जिसकी अखंड दीप शिखा विगत सौ वर्षों से और भी प्रखर होकर दिग्भ्रमित विश्व का पथ प्रदर्शन करने, अध्यात्म के दीप में कारज की ज्योति प्रज्वलित करने के लिए जल रही है मौन, नीरव, निष्कम्प रूप से।

ज्ञान के दो लक्षण हैं। पहला तो यह कि कूटस्थ बुद्धि हो। लाख दुःख, कष्ट, विपत्तियाँ और विघ्न हों—सब में निर्विकार रहना—जैसे लोहार के यहाँ का लोहा, जिसपर हथौड़ा चलाते है। और दूसरा है—पुरुषकार—पूरी जिद। काम और क्रोध से अपना अनिष्ट हो रहा है—देखा कि एकदम त्याग!! कछुआ जब अपने हाथ पैर भीतर समेट लेता है, तब उसके चार खण्ड कर डालने पर भी उन्हें वह बाहर नहीं निकालता।

—श्रीरामकृष्ण

माँ सारदा के जीवन में ज्ञानयोग

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम,
लक्सा, वाराणसी।

चारों योगों में ज्ञानयोग को सर्वाधिक दुष्कर स्वीकृत किया गया है। क्योंकि यह शुष्क विचार-मार्ग है, तथा इसमें अधिकारी विचार भी बहुत किया जाता है। साथ ही ज्ञान योग या ज्ञानमार्ग का उत्तम अधिकारी भी विरले ही मिलता है। माँसारदा एक निरक्षरा, सरल, कोमल ग्रामीण महिला थीं जिनके लिए लालटेन की बत्ती ठीक करना भी एक जटिल कार्य था। क्या उन्होंने ज्ञानयोग की साधना की थी या वह सहज ही उनके लिए संभव हुआ था? अगर इन प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' है, तो यह हम सामान्य अनधिकारियों के लिए बड़े आश्वासन का विषय होगा। तब तो हम लोग भी किसी न किसी सीमा तक ज्ञानयोग को अपने साधन जीवन के अंगीभूत करने का साहस संजोने में सफल हो सकेंगे।

अब प्रश्न उठता है कि ज्ञानयोग है क्या, तथा इसका लक्ष्य क्या है? विचार द्वारा यह जानना कि मैं कौन हूँ, जगत् का स्वरूप क्या है, तथा ब्रह्म क्या है? तदन्तर विचार द्वारा ही शुद्ध आत्मा और ब्रह्म का एकत्व स्थापित करना "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः" वेदान्त के इस अन्तिम निर्णय को विचार द्वारा समझना और धारणा करना ज्ञानयोग का लक्ष्य है। लेकिन इसके लिए साधन चतुष्टय सम्पन्न अधिकारी का होना आवश्यक है। विवेक, वैराग्य मुमुक्षत्व तथा षट् सम्पत्ति अर्थात् शम, दम, उपरति तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान, ये गुण साधन चतुष्टय के अन्तर्गत आते हैं। माँसारदा के जीवन तथा चरित्र का अध्ययन एवं अनुध्यान करने पर हम पायेंगे कि वे उपर्युक्त साधन चतुष्टयसम्पन्न एक उत्तम अधिकारी थीं।

साधन चतुष्टय:

स्वयं श्रीरामकृष्ण ने उन्हें नित्यानित्यवस्तु विवेक का पाठ पढ़ाया था। जब उन्होंने श्रीरामकृष्ण के सम्मुख सन्तान प्राप्ति की इच्छा प्रकट की थी तब श्रीरामकृष्ण ने उन्हें पुत्रादि की अनित्यता का उपदेश दिया था। स्वयं माँ ने अपने पेचिश रोग से जर्जरित कंकाल सम देह की छाया सरोवर के जल में देखकर उसके नश्वरत्व, तथा अशुचित्व का विचार कर अपने मन से देहासक्ति का त्याग किया था। माँ वैराग्यसम्पन्न भी थीं। श्रीरामकृष्ण के यह पूछने पर कि क्या वे उन्हें संसार में खींचना चाहती हैं, माँ ने अपने इहकाल-और परकाल के पूर्ण विरक्त चरित्र का परिचय देकर केवल श्रीरामकृष्ण से उनकी सेवा का ही अधिकार माँगा था, सांसारिक भोग नहीं। अच्छी भोग्य वस्तुओं की प्राप्ति पर वे इसलिए प्रसन्न होती थीं कि उनसे भक्तों की सेवा हो सकेगी। इसमें उनकी स्वयं की भोगेच्छा कारण नहीं थी।

माँसारदा में मुमुक्षत्व या मुक्ति की इच्छा का कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता। लेकिन उनकी तीव्र आध्यात्मिक पिपासा के दृष्टान्त अवश्य मिलते हैं। एक बार उन्होंने भाव-दर्शन, समाधि आदि प्राप्त करने की अपनी इच्छा को श्रीरामकृष्ण से कहलवाया भी था। श्रीरामकृष्ण के प्रति उनके तीव्र अकर्षण, जिसके कारण वे अनेक कष्ट सहकर पैदल अपने गाँव से श्रीरामकृष्ण के निकट आयी थीं, को भी उनकी तीव्र आध्यात्मिक पिपासा का दृष्टान्त माना जा सकता है। क्योंकि श्रीरामकृष्ण केवल उनके पति ही नहीं थे, वे उनके इष्टदेवता भी थे। माँसारदा भी श्रीरामकृष्ण को पति के

रूप में नहीं देखती थीं। सामान्यतः प्रारम्भ में आध्यात्मिक लक्ष्य की हमारे मन में स्पष्ट धारणा नहीं होती। ऐसे में किसी सन्त महापुरुष के प्रति तीव्र आकर्षण का अनुभव करना आध्यात्मिक पिपासा का लक्षण माना जा सकता है।

मां सारदा के जीवन में शम अर्थात् मन का संयम, दम अर्थात् इन्द्रियों का संयम, उपरति अर्थात् बाह्य विषयों से मन की उपरामता तथा तितिक्षा अर्थात् कष्ट सहिष्णुता तो श्रीरामकृष्ण की सेवा करते, दक्षिणेश्वर के संकरे नहबतखाने में अनेक कष्ट सहते हुए निवास करते हुए ही सध गये थे। षट् सम्पत्ति के अन्य दो गुण – गुरु व शास्त्रवाक्य में श्रद्धा—भी मां में विद्यमान थे। श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक निर्देश ही नहीं, उन्होंने उनके लौकिक निर्देश तक को सारे जीवन अक्षरशः पालन किया था तथा उनका उल्लेख उनके वार्तालापों में यत्र तत्र विद्यमान है। समाधान या चित्त की एकाग्रता का उल्लेख राजयोग के प्रसंग में किया जा चुका है।

श्रवण मनन निदिध्यासन।

उपर्युक्त विवेचन से यह तो निश्चय किया ही जा सकता है कि मां ज्ञानयोग की एक उत्तम अधिकारिणी थीं। वेदान्त की मुख्य साधना है—महावाक्य का श्रवण, मनन और निदिध्यासन। मां ने विधिवत् संन्यास ग्रहण तो नहीं किया था, लेकिन वे आन्तरिकरूप से संन्यासिनी थीं, यह माना जा सकता है। भले ही उन्होंने गुरु के श्रीमुख से महावाक्य न सुना हो, पर कथा प्रसंग में श्रीरामकृष्ण से जीव, ब्रह्म, माया आदि के विषय में अनेक बातें अवश्य सुनी थीं, तथा उनका मनन भी किया होगा ऐसा अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

जीवन्मुक्तावस्था।

हम पहले ही देख आये हैं कि मां को निर्विकल्प समाधि हुई थी, लेकिन यह ज्ञान-समाधि थी या निरोध समाधि, कहना कठिन है। इसके अतिरिक्त मां की जीवनी का अवलोकन करने पर इस बात के स्पष्ट प्रमाण प्राप्त होते हैं कि उन्होंने एक जीवन्मुक्त की तरह अपना सारा जीवन बिताया था। उन्हें सदा अपने स्वरूप का ज्ञान रहता था। अपने शरीर को बनाये रखने के लिए उन्होंने राधू रूपी माया को स्वेच्छा से स्वीकार किया था। इस सन्दर्भ में श्रीरामकृष्ण का कथन उल्लेखनीय है कि अनेक मुक्त महापुरुष लोक कल्याण के लिए विद्या का, अथवा भक्त का "मैं" रख लेते हैं।

मां के अनेक आचरण बालवत्, उन्मत्तवत् अथवा जड़वत् जीवन्मुक्त की तरह हुआ करते थे। रोटी बेलते समय बालक राममय से रूठ जाना, रुग्णावस्था में बालक की तरह व्यवहार करना आदि इसके दृष्टान्त हैं। कभी-कभी वे समाधिस्थ हो जड़वत् हो जाया करती थीं। ईश्वरी आवेश होने पर वे उन्मत्त की तरह अट्टहास कर उठती थीं; जो निकटवर्ती सभी को भयभीत और स्तंभित कर देता था। मां की अनेक उक्तियां उनकी सर्वात्मभाव में प्रतिष्ठा एवं सर्वत्र ब्रह्मदर्शन की द्योतक हैं। अपने एक शिष्य, जो राधू की पालतू बिल्ली को चोरी आदि करने के लिए मारते रहते थे, को मां ने एक बार कहा था "बिल्ली में भी मैं हूं।" एक दिन मां के मुंह से निकल पड़ा था, "इतने हाथों से काम कर रही हूं फिर भी पूरा नहीं कर पाती।" जीवन की सायं वेला में वे सभी में श्रीरामकृष्ण को देखने लगी थीं। एक बार ठाकुर को भोग देने के पूर्व ही उसमें से अग्र भाग उन्होंने एक तोते को खिला दिया था, क्योंकि उसमें उन्हें ठाकुर के दर्शन हुए थे।

उपर्युक्त स्व स्वरूप की स्वीकारोक्तियों के अतिरिक्त मां ने वार्तालापादि में अपनी अद्वैत वेदान्त-परक मान्यता को भी व्यक्त किया है। अद्वैत आश्रम मायावती में श्रीरामकृष्ण की आनुष्ठानिक पूजा होनी चाहिए या नहीं, इस विवाद के समाधान में भी मां ने कहा था "हम अद्वैतवादी हैं; मैं निश्चय

पूर्वक कह सकती हूँ कि ठाकुर अद्वैतवादी थे।" एक बार वेदान्त के मूर्त विग्रह स्वामी विवेकानन्द ने माँ से कहा कि माँ, विचार में अर्थात् नेति नेति विचार द्वारा सब कुछ उड़ा जा रहा है। इसके उत्तर में माँ ने हँसते हुए कहा था "देखना कहीं मुझे न उड़ा देना" इसी सन्दर्भ में माँ ने अपने एक शिष्य से कहा था "नेति नेति करते-करते सब उड़ जाता है, बस "माँ, माँ बचता है।" जिसे अद्वैत-वादी अहं, या ब्रह्म कहते हैं, उसी को माँ ने यहाँ "माँ" कहा है।

माँ कहती थीं, कोई पराया नहीं है, सभी अपने हैं। उनका व्यवहार भी इसी के अनुरूप था। उन्होंने गृहस्थ, संन्यासी, स्त्री-पुरुष, युवा-वृद्ध, पापी-पुण्यात्मा, सभी को समान रूप से अपनी सन्तान के रूप में स्वीकार किया था। गीता के अनुसार सबके प्रति समान दृष्टि ब्रह्मज्ञान का लक्षण है, क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सम है। ब्रह्मज्ञानी विद्याविनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते, चाण्डाल सभी में समदर्शी होते हैं। माँ सारदा के जगत् के समस्त प्राणियों पर मातृभाव की, वेदान्तपरक व्याख्या करने पर हमें उन्हें सर्वत्र ब्रह्मदर्शी ब्रह्मज्ञानी मानने को बाध्य होना होगा।

उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि माँसारदा एक श्रेष्ठ ज्ञानयोगिनी एवं ज्ञानी थीं। उन्होंने विधिवत् संन्यास लेकर परंपरानुसार ज्ञानयोग की साधना भले ही न की हो पर उन्हें वे सभी अवस्थाएँ एवं उपलब्धियाँ प्राप्त हुई थीं जो एक ब्रह्मज्ञानी को प्राप्त होती हैं। यह तथ्य अपने आप में विशेष महत्त्व का है। निष्ठापूर्वक किसी भी मार्ग से चलने पर साधक अन्ततोगत्वा उच्चतम लक्ष्य एवं स्थिति को प्राप्त कर सकता है, यह बात माँ के जीवन के इस पक्ष से स्पष्ट हो जाती है।

श्रीरामकृष्ण की अंत्यलीला (२)

—स्वामी प्रभानन्द
सहायक सचिव, रामकृष्ण मठ एवं मिशन
अनुवादिका डॉ० नन्दिता भार्गव

(२)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण बलराम भवन के दूसरे मंजिल में हैं। सवेरे ही वहां मास्टर महाशय उपस्थित हुए। वे "मेट्रोपॉलिटन स्कूल" के श्याम बाज़ार वाली शाखा के प्रधान अध्यापक हैं। विद्यालय १०० श्याम पुकुर स्ट्रीट में स्थित है :

आज २७ सितम्बर, रविवार १८८५ ई० आश्विन कृष्ण तृतीया है। श्रीरामकृष्ण स्नान करने की तैयारी कर रहे थे। तेल के लिए व्यग्र हुए। आप कमरे के फर्श पर ही बैठे थे। पहले आपने अपने बालों पर स्वयं ही तेल लगाया। सेवक हरीश का हाथ सिर पर से हटा दिया। बलराम के यहाँ जगन्नाथ देव की रोज ही पूजा अर्चना होती थी।"[1] स्नान के पश्चात् श्रीरामकृष्ण ने जगन्नाथ देव को देखने की इच्छा व्यक्त की। आपने कहा कि जगन्नाथ से तसवीर-जगन्नाथ देखने की इच्छा हो रही है। भवन के अन्तःपुर में दूसरी मंजिल की उत्तर-पूर्व दिशा में पूजा घर था। श्रीरामकृष्ण वहां गये और जगन्नाथ देव को दर्शन करके जल्दी ही अपने कमरे में लौट आये। श्रीरामकृष्ण ने राखाल की ओर देखा। पास में ही एक आराम कुर्सी पड़ी थी। आपने इशारे से राखाल को उस पर बैठने को कहा। राखाल के कुर्सी पर बैठते ही श्रीरामकृष्ण का मुख मण्डल प्रसन्नता से उज्ज्वल हो गया।

× × ×

तीसरे पहर स्कूल से लौटते समय मास्टर महाशय बलराम भवन आये हैं। लगभग तीन बजे थे। मास्टर महाशय को सम्बोधित कर श्रीरामकृष्ण ने संकेत से पूछा, छोटा नरेन क्या चाहता है जी?" नरेन्द्र मित्र मास्टर महाशय का छात्र था। वह श्याम पुकुर में रहता था। स्नेहवश ठाकुर उसे छोटा नरेन कहकर पुकारते थे। ठाकुर के साथ उसका प्रथम परिचय ७ मार्च, १८८५ ई० के कुछ पहले हुआ था। ठाकुर उसकी पवित्रता की प्रशंसा करते थे। कभी कभी उसे देखने के लिये व्याकुल हो जाते थे।

मास्टर महाशय ने अपने एक किशोर छात्र बंकिम की भक्ति के बारे में ठाकुर को बतलाया।[2] यह सुन आप प्रसन्न हुए। ऐसे समय नरेन्द्र आ गये। नरेन्द्र ने मास्टर महाशय की ओर इंगित कर श्रीरामकृष्ण से कहा, "कल (रात को) दो मसहरियों के बीच में सोये रहे-(निरीह) भोले हैं न।" इसी समय मुर्शिदाबाद से एक वैष्णव बाबाजी आये। उनके साथ भक्त नव गोपाल घोष थे। "पूंथी" में इस घटना का विवरण निम्न प्रकार से दिया गया है—

एक दिन सुनो एक श्रीप्रभुर खेला।
गगने केवल बाकी प्रहरेर बेला॥
गौरांग-भकत एक ब्राह्मण नन्दन।
नामावली छिटाफोंटा अंग सुशोभन॥
प्रभुर महिमा कथा लोक मुखे सुनो।
आसितेन पथे पथे कभु दरशने॥

× × ×

सरल विश्वासे तेह पाईल देखिते।
विस्मय-चरित खानी प्रभुर चरिते॥
विस्मय सहित नानाविध चिन्ता मने।
अवशेषे अवनित बसुर भवने॥[3]

(प्रभु के खेल की एक दिन की बात सुनो। अपराह्न का समय था॥ गौरांग के एक भक्त ब्राह्मण नामावली ओढ़े हुए थे॥ प्रभु की महिमा लोगों से जान कर॥ कभी कभी दर्शन करने आते

थे। वह सरल विश्वास के थे। उन्होंने गौरांग को प्रभु में देखा ।। नाना प्रकार की चिन्ता करते करते। अन्त में बसु के घर उपस्थित हुए ।।)

श्री रामकृष्ण भक्तों से घिरे बैठे थे। बाबाजी ने श्रीरामकृष्ण के चरणों में माथा टेक कर प्रणाम किया। आपने बाबाजी को बैठने के लिए इंगित किया। नव गोपाल घोष ने बाबाजी का परिचय करवा दिया। इसके बाद बाबाजी खड़े हो गये और श्रीरामकृष्ण को उन्होंने दो बार प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण ने इशारे से ही कहा, "आधार अच्छा है।"

पूँथि के लेखक ने इस सन्दर्भ में एक संवाद दिया है—श्रीरामकृष्ण हाथ में एक पंखा लिये हवा झेल रहे हैं। बाबाजी की इच्छा हुई कि वे श्रीरामकृष्ण को पंखे से हवा करें। "हृदय निवास प्रभु बुझिया अन्तरे। समर्पण कैला पाखा ब्रह्मणेर तरे ।।

(अन्तरयामी प्रभु बाबाजी की अभिलाषा को समझ गये और उन्हें पंखा दे दिया)। पंखा पाकर बाबाजी बहुत प्रसन्न हुए और जी भर कर श्रीरामकृष्ण को हवा करने लगे ।।

श्रीरामकृष्ण "आज मेरी नसीब अच्छी है।"

नरेन्द्र ने इसके अर्थ को व्याख्या की।

वैष्णव बाबाजी "आप इसे मेरी किस्मत कह सकते हैं—जैसे निमाई ने जगाई तथा मधाई नामक दो पापियों का परित्राण किया था।"

यह सुन श्रीरामकृष्ण की आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे। आप विस्तर से उठकर बाबाजी की ओर आये और भावाविष्ट हो गये। "कमला द्वारा सेवित वे अमूल्य चरण, भावावेश में श्रीरामकृष्ण ने बाबाजी के वक्ष-स्थल में अर्पित कर दिये। इससे भाग्यवाम ब्राह्मण का हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया। "बाबाजी बड़े प्रेम पूर्वक श्रीरामकृष्ण के चरणों को अपने वक्ष-स्थल पर धारण किये रहे। श्रीरामकृष्ण, "बोलो कृष्ण-चैतन्य।"

अत्यधिक भाव के कारण बाबाजी ने चिल्ला कर कहा, गौर, कृष्ण चैतन्य, प्रेम दयाल निताई" भाव विह्वल श्रीरामकृष्ण पुनः प्रेमाश्रु प्रवाहित करने लगे। आपने अपनी आँखों को हाथ से ढक लिया, परन्तु फिर भी आँसू बहते रहे। भाव विभोर श्रीरामकृष्ण के चरण कमल वैष्णव के वक्षस्थल पर स्थापित थे। वैष्णव ने बड़े सावधानी से चरण धारण कर रखा। प्रेम वितरण के इस मनमोहक दृश्य को देखकर भक्तगण मुग्ध हो गये। प्रकृतिस्थ होने के बाद ठाकुर ने बाबाजी को लक्ष्य कर कहा, "तुम तो चंगे हो। मेरे इस को (कण्ठ पीड़ा को) ठीक कर दो।"

"कैसे ठीक होगा ? औषधि (इत्यादि दो न)"

कुछ समय बाद श्रीरामकृष्ण चिन्तित हो गये क्योंकि भावाविष्ट होकर आपने दूसरे के वक्ष-स्थल पर अपना पैर रख दिया था। मानो अपने आचरण के समर्थन में ही कहने लगे, "समझ गया। (पैर वक्ष में रखते समय) महावायु ऊपर की ओर जा रहा था—सीना धुक-धुक कर रहा था—उस समय शरीर ज्ञान नहीं रह पाता—क्या अपराध हो गया, क्या अपराध हो गया ?"[4] श्रीरामकृष्ण फिर बोले, "अन्दर (कोई एक) है (जो यह सब कर रहा है)[5]

(३)

आज सोमवार है। २८ सितम्बर, १८८५ ई०। स्कूल जाने के रास्ते मास्टर महाशय श्रीरामकृष्ण के पास आये। लगभग साढ़े नो बजे का समय होगा। श्रीरामकृष्ण स्नान के लिए प्रस्तुत हो रहे थे। ठाकुर को तेल लगाया जा रहा था। आपने मास्टर महाशय से पूछा, (डाक्टर) क्यों नहीं आया ? मास्टर महाशय, ("प्रताप डॉक्टर ने) कल कहा था कि वह दस या ग्यारह बजे आयेंगे।, फर्श पर बैठे, श्रीरामकृष्ण स्नान करते रहे। सेवक हरीश से बोले, "उस लोटे को ले आ।" मास्टर महाशय लोटा लाने बढ़े और बाबूराम से पूछा कि लोटा कहां है। श्रीरामकृष्ण ने इंगित से बताया कि लोटा कमरे में है और उसे धोकर आपको दिया

जाय। स्नान के पश्चात् जगन्नाथ देव को दर्शन और प्रणाम करने गये। कुछ देर बाद ठाकुर अपने कमरे में लौट आये। कमरे में एक आराम कुर्सी थी। राखाल ने श्रीरामकृष्ण को अनुरोध कर कहा, "बैठिये ना।" श्रीरामकृष्ण कुर्सी पर आराम से पीठ टेककर बैठ गये और पैरों को फैला दिया। राखाल, (ऐसे बैठकर) ध्यान अच्छा होता है।"

श्रीरामकृष्ण "ऊध्वर्ग नहीं होता।" [मन उर्ध्व-गामी नहीं होता।]

थोड़ी देर बाद श्रीरामकृष्ण ने संकेत से ही पूछा, (इस कुर्सी का) मूल्य कितना है ?" बलराम, "कटक में इसका मूल्य छः रुपये है, परन्तु यहाँ दस बारह रुपये होंगे।"

श्रीरामकृष्ण (हरीश से)—"खाना खा लिया क्या ?"

श्रीरामकृष्ण (राखाल से)—"(उनसे जाकर खाने के लिए) कह तो।"

राखाल—"शर्म आती है।"

श्रीरामकृष्ण (सहास्य मास्टर महाशय से)—"खाना खा लिया ?"

राखाल -"ये भात खाकर आये हैं।"

श्रीरामकृष्ण पूर्ण के बारे में मास्टर महाशय से कहते हैं, "(पूर्ण को) पालकी में ले आया जाय ?"

मास्टर महाशय, "यहाँ मुहल्ले के लोग देखेंगे, इस कारण डर लगता है। सम्भवतः पाँच सात दिन में आपको देखने आयेगा।"

पूर्ण मास्टर महाशय के स्कूल में पाँचवीं कक्षा में पढ़ते थे। ठाकुर कहते कि "पूर्ण नारायण का अंश है"—नरेन्द्र के नीचे ही पूर्ण का स्थान है। उसे देखने के लिए ठाकुर व्याकुल हो जाते तथा पूर्ण के अनुराग की प्रशंसा करते थे। परन्तु पूर्ण के संरक्षक ठाकुर के साथ उसके घनिष्ठ सम्बन्ध को पसन्द नहीं करते थे। अतः उन्होंने पूर्ण को मास्टर महाशय के स्कूल से हटा लिया और एक दूसरे स्कूल में भर्ती करवा दिया।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर महाशय को), "क्या मैं यहाँ (ठीक) हूँ ?"

मास्टर "(आप) अवश्य ठीक हैं।"

मास्टर महाशय राखाल को लक्ष्य कर कहते हैं, "आप (श्रीरामकृष्ण) कुछ खायेंगे नहीं ? यहाँ राखालने क्या उत्तर दिया था यह मालूम नहीं है। श्रीरामकृष्ण ने अपने मसाले (लौंग, इलाइची आदि) का बटुआ लाने के लिए कहा। आप बरामदे में जाकर खड़े हो गये। राखाल को लगा कि जैसे महिलायें स्नान करने के पश्चात् केश सुखाती हैं श्रीरामकृष्ण भी वैसा कर रहे हैं। राखाल ने पूछा, "क्या केश सुखा रहे हैं ?"

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—"हाँ"

कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण ने इस बात की ओर इशारा किया कि अखण्डानुभूति के पश्चात् उनका कर्म त्याग हो गया है। आप ने कहा, "पहले (स्नान के बाद) बेल पत्ता और जगन्नाथ का प्रसाद खाता था। अब वैसा नहीं करता हूँ क्योंकि यह सब बाहरी आचार मात्र है।"

गिरीशचन्द्र, दीवान तथा कुछ और आदमी आये हैं। गिरीश पिछले दिन वाले वैष्णव के विचार के बारे में बोले, "वैष्णव कह रहे थे कि आयुर्वेदिक चिकित्सा ही ठीक रहेगी। आप किसी वैद्य का नाम बतलाइए न ! जैसे कृष्ण को बुखार आने पर कृष्ण ने स्वयं ही वैद्य बनकर अपनी चिकित्सा की थी। ब्राह्मणों के चरण पखार कर जल पीने के लिए महाप्रभु को बुखार आ गया था।[2] मैं कहता हूँ कि इसी प्रकार दुश्चरित्रों को तारना ही आपकी इस व्याधि का उद्देश्य है।"

गिरीश चन्द्र (मास्टर महाशय से)—"हलधारी ने ठाकुर के लिए कहा था कि आप अनचीन्हा पेड़ हैं।" (एक प्रकार का पेड़ जिसे कोई देख कर पहचान नहीं सकता।) गिरीशचन्द्र (श्रीरामकृष्ण को), "आपके गाँव में कोई वैद्य हो तो बतलाइए।" श्रीरामकृष्ण ने उत्तर नहीं दिया—हँसते रहे। भाव

में हँसते हँसते आपकी आँखें और मुख मुर्ख लाल हो गये। कुछ देर पश्चात् आपने अपने रोगलक्षणों के बारे में बतलाया। गिरीशचन्द्र (मास्टर महाशय से) "क्या आप अभी चल रहे हैं।"

मास्टर महाशय कुछ समय और रुकना चाहते हैं।

मास्टर महाशय, "शायद साढ़े दस बजने में देर हैं।"

गिरीशचन्द्र, "हाँ देर है।"

श्रीरामकृष्ण को हँसी आ गयी और आप मास्टर महाशय की ओर देखते रहे। इन दिनों श्रीरामकृष्ण का पथ्य सूजी का पायस था। इस बारे में आपने कहा, "किसी एक समय मन में बात आयी थी कि पायस खाकर ही रहना पड़ेगा। यह सोच कर भाव में रोया था - कि यह कैसा खाना ?"[३]

सम्भवतः इस दिन ही मास्टर महाशय के स्कूल चले जाने के बाद कतिपय प्रसिद्ध वैद्य श्रीरामकृष्ण को देखने आये थे। इस सन्दर्भ में स्वामी सारदानन्द ने लिखा है, "वृथा समय नष्ट करना उचित नहीं है, यह सोचकर भक्तों ने एक दिवस कलकत्ते के प्रसिद्ध वैद्यों को बुलाकर ठाकुर की व्याधि के सम्बन्ध में उनके मतामत प्राप्त किये। गंगाप्रसाद, गोपी मोहन, द्वारकानाथ, नवगोपाल आदि अनेक वैद्यों ने आकर ठाकुर की परीक्षा की और यह निश्चय किया कि उन्हें रोहिणी नामक असाध्य रोग हुआ है। जाते समय गंगा प्रसाद ने एक भक्त से कहा, "डॉक्टरगण जिसे कैंसर कहते हैं, वही रोहिणी है। शास्त्रों में इसकी चिकित्सा का विधान रहने पर भी असाध्य बताया गया है।" वैद्यों से कुछ विशेष आशा न पाकर और अधिक औषधि का सेवन ठाकुर के लिए हानिकारक जानकर भक्तों ने आपकी होमियोपैथी चिकित्सा कराना ही उपयुक्त समझा।[४] "कथामृत" से ज्ञात होता है कि सम्भवतः इसी दिन ठाकुर ने वैद्य गंगाप्रसाद से पूछा था, "यह रोग साध्य है या असाध्य ?" वैद्य ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया और चुप रहे।[५]

बलराम भवन में आने के पश्चात् भक्तगण आपको अंग्रेज डॉक्टर को दिखलाना चाहते थे। परन्तु श्रीरामकृष्ण सहमत नहीं हुए। "जीवन वृतान्त;' के लेखक ने कहा है, "यहाँ (बलराम भवन में) आने के पश्चात् उन्होंने अंग्रेज डॉक्टर से परीक्षा करवाने को मना कर दिया। इस कारण प्रताप बाबू ही ईलाज करने लगे। परमहंस देव का शरीर बालकों से भी अधिक दुर्बल था। अतः 'होमियोपैथी' की मात्र एक गोली खाने से उनका शरीर विकृत हो जाता था।" प्रताप बाबू बहुत सावधानी से औषधि की व्यवस्था करते थे।[६]

उसी दिन तीसरे पहर लगभग साढ़े चार बजे स्कूल की छुट्टी के बाद मास्टर महाशय आये। ठाकुर की ऐकान्तिक इच्छा के कारण मास्टर महाशय ने पूर्ण को कहा था कि वह एक बार आपसे अवश्य मिलने आयें। अवसर पाकर मास्टर महाशय ने श्रीरामकृष्ण को बताया, "पूर्ण आयेगा परन्तु घर में जरा—।" इधर बालक स्वभाव श्रीरामकृष्ण प्रताप डॉक्टर के न आने पर अधीर हो रहे हैं। अकस्मात् पूर्ण उपस्थित हुए। पूर्ण को देखकर ठाकुर प्रसन्न हुए। पूर्ण पसीने से तर हो रहे थे यह देखकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने अपने कपड़े से उसका पसीना पोंछ दिया। पूर्ण के कंधे पर अपने बायें हाथ को रख कर ठाकुर अश्रु विसर्जन करने लगे और धीरे धीरे निश्चल हो गये - चित्रवत्।

इस दृश्य को देखकर मास्टर महाशय को महाभारत की एक घटना स्मरण हो आयी। श्रीकृष्ण द्वारका से चले जा रहे हैं। सारथि दारुक रथ लेकर उपस्थित हैं। विदाई का बड़ा ही मर्मस्पर्शी क्षण। उदास पाण्डवगण हाथ जोड़े अश्रु पूर्ण नेत्रों से श्रीकृष्ण को निहारते रहे। दिल भरा हुआ-मुख से कुछ कह नहीं पा रहे। श्रीकृष्ण भी दुःखित हो कुन्ती, धृतराष्ट्र, गांधारी, विदुर, कृष्ण

द्वैपायन व्यास तथा अन्यान्य ऋषियों तथा मंत्रियों की अनुमति लेकर सुभद्रा तथा पुत्र सहित उत्तरा को हाथों से स्पर्श करते हुए गृह से बाहर आकर रथ पर सवार हुए।' कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण ने अपने आप को सम्भाल लिया। आपने राखाल के साथ पूर्ण का परिचय करवा दिया और बोले, "इसका नाम पूर्ण है।" श्रीरामकृष्ण ने अपने वक्ष पर हाथ रखकर मास्टर महाशय को लक्ष्य कर कहा, "मन बहुत विकल होता है।"—

पूर्ण की सुलक्षण युक्त आँखें आदि देखकर श्रीरामकृष्ण ने कहा, "अन्दर जो हैं (वे) मानो आँखों से इस प्रकार (देख) रहे हैं।

पूर्ण को जलपान करने दिया गया। श्रीरामकृष्ण ने हरीश को कहा, "पानी ला दे।" वे पूर्ण को लेकर एक ओर चले गये। मास्टर महाशय को इंगित से राखाल को भेजने के लिए कहा। श्रीरामकृष्ण ने पूर्ण को अपने हाथों से पानी पिलाया। स्वयं ही उसके हाथ धुला दिये और बोले, "तुम राखाल को "दादा" कहना। उसके साथ तुम्हारा एक (सम्बन्ध) है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने स्वयं ही पूर्ण को सुपारी इलाइची भी दी। श्रीरामकृष्ण बिस्तर पर आकर बैठ गये और पूर्ण को बोले, 'पैरों पर हाथ फेर दो।"

बालक पूर्ण बायें हाथ से आपके पैरों पर हाथ फेरने लगा तो श्रीरामकृष्ण ने कहा "दाहिने हाथ से फेरो।"

पूर्ण ने मास्टर महाशय की ओर देखकर मन्द मुस्काया। श्रीरामकृष्ण भी मुस्कुराने लगे। पूर्ण के चले जाने के बाद श्रीरामकृष्ण रुक रुक कर, मन ही मन मुस्कुराने लगे। आप भाव में हँसते रहे। ठाकुर गाव तकिया पर पीठ से सहारा लेकर बैठ गये। एकाएक समाधिस्थ हो गये। उपस्थित सभी लोग विस्फारित नेत्रों से महापुरुष को देखने लगे। अभी-अभी तो पूर्ण को लेकर प्रसन्न हो रहे थे, परन्तु अब कहाँ चले गये!

युवक भवनाथ कमरे में आये और बहुत देर तक प्रतीक्षा करते रहे। पर सम्भवतः श्रीरामकृष्ण से किसी प्रकार का संकेत नहीं पाने पर निराश होकर बाहर चले गये। थोड़ी देर बाद में वे फिर आये और वहाँ बैठे भक्तों से पूछा "क्या, क्या-तुम लोग जाओगे?" श्रीरामकृष्ण ने भवनाथ को तख्त पर बैठने कहा। परन्तु भवनाथ फर्श पर ही बैठ गये। ठाकुर ने उन्हें जलपान करने के लिए आग्रह किया तो भवनाथ ने मिश्री का एक टुकड़ा ले लिया।

"होमियोपैथी" के डॉक्टर प्रताप चन्द्र मजूमदार आये हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने चिकित्सक को अपने रोग के लक्षणों के बारे में बतला दिया। श्रीरामकृष्ण "(कोई कोई) स्थान गोल होकर सूज जाता है—हवा जाकर लौट आती है—निगलने के बाद रात को खाँसी चलती है—मानो अण्डी का तेल (गले के अन्दर हो) बाद में मवाद होकर बाहर निकल आता है।

कण्ठ की पीड़ा के बारे में ठाकुर ने कहा। (मानो) कोई चाकू भोंक रहा हो-घाव फूट जाने से जिस प्रकार यंत्रणा होती है वैसी ही भयंकर वेदना होती है" "रात किसी प्रकार कटती है।"—'पानी से स्नान करता हूँ—।" रोगी के वक्तव्य को सुन कर तथा उनकी परीक्षा कर डॉक्टर प्रताप चन्द्र ने औषधि निर्धारित की। अब डॉक्टर विदा लेंगे। उन्होंने अपनी औषधि के बक्से को मास्टर महाशय को पकड़ा दिया। श्रीरामकृष्ण ने इंगित से डॉक्टर को अपने पास बुलाया और कहा तुम्हारे ऊपर ही सब कुछ निर्भर कर रहा है, परन्तु तुम नहीं आते हो।" इसके बाद श्रीरामकृष्ण स्वयं ही औषधि के बक्से की ओर आ गये और व्याधि के बारे में डॉक्टर की राय पूछी। डॉक्टर प्रताप, "आपका (रोग) तो ठीक हो गया है।"

श्रीरामकृष्ण, "फिर लाल सा क्यों है?"

(४)

मंगलवार, २९ सितम्बर १८८५ ई० है। सवेरे के समय मास्टर महाशय श्रीरामकृष्ण को देखने बलराम भवन में आये हैं। उस समय श्रीरामकृष्ण

के समीप धीरेन्द्र ठाकुर, गोलाप माँ गृहस्वामी बलराम बसु थे।

तीसरे पहर मास्टर महाशय स्कूल से लौटते समाप जागे और बाग में सात बजे तक वहाँ रहे। श्रीरामकृष्ण के समाधिरत शरीर की अवस्था में कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं दे रहा था।

---

(२)

१. बसु परिवार की उड़ीसा के कोठार नामक स्थान में जमींदारी थी। परवर्ती काल में वहाँ जगन्नाथ देव की मूर्ति को ले जाया गया था।

२. कुछ दिन बाद ता० २७-१०-१८८५ ई० को श्रीरामकृष्ण ने मास्टर महाशय से पूछा था, "बंकिम किस प्रकार का है? यदि वह यहाँ नहीं आ सके तो तुम ही उसे सब कुछ बताना। इसी से उसका चैतन्य होगा" (कथामृत ४/२६/१)

३. श्री श्रीरामकृष्ण पूँथि, ६ वां संस्करण पृ. १८५

४. २५-१५-१८८५ई०को एक ऐसी ही कृपा बरसाने की घटना के बाद श्रीरामकृष्ण ने कहा था, "आवेश में न जाने क्या हो जाता है, इस समय लज्जा आ रही है उस समय जैसे भूत सवार हो जाता है, मैं फिर मैं नहीं रह जाता।" वचनामृत तीसरा भाग, पृ० ३७२

५. श्रीरामकृष्ण ने जनवरी १८८३ ई० को कहा था "इस के भीतर कोई एक रहता है। वही मुझे इस तरह चला रहा है। श्रीरामकृष्ण वचनामृत भाग प्रथम पृ २१३

(३)

१. उध्वर्ग-ऊपर की ओर जाना।

२. गया धाम में पहुँचने के बाद चैतन्य महाप्रभु ने चिर नदी में स्नान तथा मंदार पर्वत का दर्शन किया। उनके एक साथी ने पर्वत के पास किसी ब्राह्मण का तिरस्कार कर उसे कष्ट पहुँचाया था। अचानक चैतन्य को तेज बुखार आ गया। लोग चिन्तित हुए। अन्त में चैतन्य ने ही बतलाया कि ब्राह्मण के पादोदक पीने से वे ठीक हो जायेंगे। तत्पश्चात् उसी प्रान्त के एक ब्राह्मण का पादोदक पान कर वे रोगमुक्त हुए (चैतन्य मंगल, पृ० ११५—११६)

३. २३ दिसम्बर १८८५ को श्रीरामकृष्ण ने कहा था, "भावावस्था में दिखा दिया कि अंतिम समय खीर खाकर रहना पड़ेगा। इस बीमारी के समय जब गृहणी खीर खिला रही थी तो मैं यह कह कर रोया— क्या यही खीर खाना है— इतने कष्ट के समय। श्रीरामकृष्ण वचनामृत, भाग तीसरा पृ० ४७३

४. स्वामी सारदानन्दः श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग तीसरा खंड पृ० ४२०

५. श्रीरामकृष्ण वचनामृत भाग तीसरा पृ० ३२२

६. श्रीरामकृष्ण परमहंस देव का जीवन वृतांत पृ० १६५—१६६।

७. महाभारत, अश्वमेधिक पर्व, १३०/८—१०

स्वामी विवेकानन्द और इलाहाबाद

स्वामी हर्षानन्द

चूँकि स्वामी विवेकानन्द (जिन्हें लोग सामान्यतया स्वामीजी कहते हैं) रामकृष्ण भाव-आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले मूर्धन्य व्यक्ति थे, इसलिए यह आवश्यक है कि उनके प्रयाग-आगमन को तथा प्रयाग के साथ उनके सम्पर्क को इस लेख में अधिक स्थान दिया जाय। दिसम्बर १८८९ के अन्तिम भाग में स्वामीजी वाराणसी जाने के लिए वैद्यनाथ (बिहार) की ओर रवाना हुए। परन्तु वैद्यनाथ में उन्हें सूचना मिली कि उनके एक गुरुभाई, स्वामी योगानन्द, इलाहाबाद में अस्वस्थ पड़े हुए हैं। इसलिए उन्होंने तुरन्त इलाहाबाद के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँच कर उन्हें बड़ी राहत मिली जब

उन्होंने देखा कि स्वामी योगानन्द तब तक स्थानीय भक्तों की स्नेहयुक्त सेवा-शुश्रूषा के फलस्वरूप छोटी माता के रोग से मुक्त होकर पूर्णतः स्वस्थ हो चुके हैं। वे कुछ समय तक इलाहाबाद में ठहरे रहे। अपने आवासकाल में उन्होंने स्थानीय भक्तों को अपने प्रभावशाली व्याख्यानों द्वारा प्रेरित किया। इन व्याख्यानों में उन्होंने एक ओर हिन्दू धर्म का सशक्त समर्थन किया और दूसरी ओर हिन्दुओं में फैली हुई अनेक सामाजिक कुरीतियों और अनाचारों की तीखी आलोचना की। लोग कहते हैं कि यहाँ स्वामीजी की एक मुसलमान फकीर से मुलाकात हुई "जिसके चेहरे की एक-एक रेखा से यह प्रकट होता था कि वह एक परमहंस है"। यहीं उन्हें गाजीपुर के प्रसिद्ध सन्त पवहारी बाबा के बारे में पता चला, जिनसे बाद में वे मिले।

इलाहाबाद से स्वामीजी ने कुल तीन पत्र लिखे। ३० दिसम्बर १८८९ को लिखा गया पहला पत्र (द कम्पलीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानन्द, खंड ६, पृष्ठ २१६) वाराणसी के श्री प्रमदादास मित्र को भेजा गया था। इस पत्र में स्वामीजी ने श्री मित्र को अपने इलाहाबाद आने का कारण (जो उनके गुरुभाई स्वामी योगानन्द की अस्वस्थता का समाचार था) बताया था, जिन स्थानीय बंगाली सज्जनों ने योगानन्दजी की सेवा-शुश्रूषा की थी उनकी प्रशंसा की थी, तथा यह भी लिखा था कि इन सज्जनों का यह साग्रह अनुरोध है कि वे माघ-मासीय कल्पवास[1] तक के लिए इलाहाबाद में रुके रहें। उसी तारीख को लिखे गये दूसरे पत्र (वही ग्रंथ, खंड-७, पृष्ठ ४४३) में, जो श्रीरामकृष्ण के प्रसिद्ध शिष्य श्री बलराम बोस को सम्बोधित था, लगभग वही बातें लिखी गयी थीं जो श्री प्रमदादास मित्र को सम्बोधित पहले पत्र में हैं। ५ जनवरी १८९० को लिखा गया तीसरा पत्र (वही ग्रन्थ, खंड-६, पृष्ठ२१७) भी श्री बलराम बोस को सम्बोधित था, जो उस समय वैद्यनाथ में रह रहे थे। स्वामीजी इस पत्र में श्री बोस के स्वास्थ्य के बारे में चिन्ता प्रकट करते हैं तथा अपने स्वास्थ्य की कीमत पर तपस्या करने की इच्छा के लिए उनकी भर्त्सना करते हैं। वे श्री बोस की "पैसा बचाने की" सूक्ष्म इच्छा का मजाक भी उड़ाते हैं।

इलाहाबाद,

पहला पत्र

३० दिसम्बर १८८९

प्रिय महोदय,

मैंने एक पत्र में आपको लिखा था कि मैं दो-एकदिन में वाराणसी आने वाला हूँ, लेकिन विधाता के निर्णय को कौन टाल सकता है? मुझे यह समाचार मिला कि चित्रकूट, ओंकारनाथ आदि की तीर्थयात्रा के बाद इलाहाबाद पहुँचने पर मेरे एक गुरुभाई योगेन को चेचक हो गयी है और इसलिए मैं उसकी सेवा-शुश्रूषा के लिए यहाँ चला आया। योगेन अब पूरी तरह से चंगा हो गया है। यहाँ के कुछ बंगाली सज्जन बड़े ही धार्मिक और स्नेही भाव वाले हैं। वे अत्यन्त प्रेमपूर्वक मेरी देख-भाल कर रहे हैं। उनका दुराग्रहपूर्ण अनुरोध है कि मैं माघ के महीने (जनवरी-फरवरी) में यहाँ रहूँ और कल्पवास[1] करूँ, परन्तु मेरा मन तीव्रता के साथ वाराणसी के नाम का राग अलाप कर रहा है और आपसे मिलने के लिए विकल है। मैं दो-एक

---

१. कल्पवास (माघ के महीने में गंगा तट पर कल्पव्रत का पालन करते हुए एकमासीय निवास) प्रयाग की एक विशिष्टता है। जो भक्त-तीर्थयात्रीगण कल्पवास करते हैं, उनसे यह आशा की जाती है कि वे निम्न-लिखित नियमों का पालन करेंगे :

कठोर ब्रह्मचर्य का पालन, फर्श पर सोना पत्तों पर भोजन करना, सभी इन्द्रियों पर सामान्य नियन्त्रण, दान, पुण्य करना तथा अपनी इच्छा और सामर्थ्य के अनुसार अन्य कठोर नियमों का पालन करना।

दिन में यहाँ से खिसक जाने की, उन सज्जनों के दुराग्रहपूर्ण अनुरोध से बचने की, तथा बाबा विश्वनाथ की पवित्र नगरी वाराणसी में पहुँचने की भरसक कोशिश करूँगा। यदि मेरे एक संन्यासी गुरुभाई—अच्युतानन्द सरस्वती--आपसे मिलें, और मेरे बारे में कुछ पूछें, तो कृपया आप उन्हें बता दीजिएगा कि मैं शीघ्र ही वाराणसी पहुँचने वाला हूँ। वे सचमुच बहुत अच्छे और विद्वान व्यक्ति हैं। मैं बाँकीपुर में उन्हें छोड़ने के लिए बाध्य हो गया था। क्या राखाल और सुबोध अब भी वाराणसी में हैं? कृपया पता करके मुझे सूचित करिएगा कि इस वर्ष कुम्भ मेला हरद्वार में लगने वाला है या नहीं?

अनेक स्थानों पर अनेक बुद्धिमान और धार्मिक व्यक्तियों से, अनेक साधुओं और पंडितों से मेरी मुलाकात हुई है, तथा उन सबकी मेरे ऊपर कृपा हुई है, परन्तु "भिन्नरुचिर्हि लोकः"—"लोगों की रुचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं" (रघुवंश)। पता नहीं हम दोनों के बीच कौन सा आत्मिक नाता है कि आपके साथ रहना मुझे जितना अच्छा और आनन्ददायक लगता है उतना और कहीं नहीं। देखिए काशीपति विश्वनाथ की क्या इच्छा है!

भवदीय
विवेकानन्द

मेरा पता— द्वारा गोविन्द चन्द्र वसु, चौक, इलाहाबाद

दूसरा पत्र

जय श्रीरामकृष्ण

इलाहाबाद
३० दिसम्बर, १८८९

प्रिय महोदय,

गुप्त यहाँ आते हुए एक परची छोड़ गया था। अगले दिन योगानन्द के पत्र से मुझे सब समाचार मिला है और मैं तुरन्त इलाहाबाद के लिए रवाना हो गया। अगले दिन मैं वहाँ जा पहुँचा। वहाँ मैंने देखा कि योगानन्द पूरी तरह से स्वस्थ हो गये हैं। वे छोटी माता के रोग से पीड़ित थे (जैसे कुछेक चेचक के ददोरे भी निकले थे)। डाक्टर बहुत ही नेक आदमी हैं। उनके (डाक्टर और अन्य सज्जनों के) बीच भाईचारे की भावना है। वे सब परम धार्मिक व्यक्ति हैं और सदैव साधु सेवा में संलग्न रहते हैं। उन सबकी अत्यन्त इच्छा है कि मैं माघ के महीने में यहाँ रहूँ, पर मैं वाराणसी चला जाऊँगा... आप कैसे हैं? आपके और आपके परिवार के लिए ईश्वर से मंगलकामना करता हूँ। कृपया तुलसीराम, चुनी बाबू और अन्य लोगों को मेरा नमस्कार कहिएगा।

आपका स्नेही
विवेकानन्द

तीसरा पत्र

श्रीरामकृष्णाय नमः

इलाहाबाद
५ जनवरी, १८९०

प्रिय महोदय,

आपके कृपापत्र से आपकी अस्वस्थता के विषय में जानकर बड़ा दुःख हुआ। हवा बदलने के लिए आपके वैद्यनाथ में रहने के सम्बन्ध में मैंने जो पत्र लिखा था उसका सारांश यह था, कि आप जैसे अत्यन्त दुर्बल और नाजुक शरीर वाले व्यक्ति के लिए वहाँ रहना असम्भव होगा, जब तक कि आप काफी पैसा खर्च न करें। यदि वायु परिवर्तन आपके लिए वास्तव में वांछनीय है और यदि आप अब तक केवल एक अधिक सस्ते स्थान का चुनाव करने के लिए ही इसे स्थगित करते रहे हैं, तो यह निश्चित रूप से खेद का विषय है... जहाँ तक हवा का सम्बन्ध है वैद्यनाथ उत्कृष्ट स्थान है, परन्तु वहाँ का पानी अच्छा नहीं है क्योंकि वह पेट की गड़बड़ी पैदा करता है। वहाँ मैं प्रतिदिन अम्लता से पीड़ित

रहता था। मैंने आपको एक पत्र पहले ही लिखा है। क्या आपको यह पत्र मिला है या उसे बैरंग चिट्ठी पाकर आपने उसे उसके भाग्य पर छोड़ दिया है? मेरे विचार से यदि आपको हवा बदलने के लिए कहीं जाना है तो जितनी जल्दी जा सकें उतना ही अच्छा होगा। परन्तु क्षमा करियेगा, आपकी प्रवृत्ति हमेशा ऐसी आशा करने की है कि हर चीज बिल्कुल आपकी आवश्यकताओं के अनुरूप होगी, किन्तु दुर्भाग्यवश इस संसार में ऐसी स्थिति बहुत ही कम पायी जाती है। "आत्मानं सततं रक्षेत्" —"किन्हीं भी परिस्थितियों में मनुष्य को अपनी रक्षा स्वयं करनी चाहिए"। 'ईश्वर हम पर दया करें"—यह अपनी जगह पर ठीक है, परन्तु ईश्वर उसी की सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करता है। यदि आप केवल पैसा बचाने की कोशिश करेंगे, तो क्या ईश्वर अपनी पैत्रिक पूँजी से पैसा निकाल कर आपके हवा बदलने की व्यवस्था करेगा? यदि ईश्वर पर आपको इतना विश्वास है, तो मेहरबानी करके डाक्टर को न बुलाइए।.... यदि आपके लिए यह उपयुक्त न हो तो आपको वाराणसी जाना चाहिए। मैं पहले ही यहाँ से चला जाता लेकिन स्थानीय भक्त सज्जनों से मुझे जाने की अनुमति नहीं मिल रही।......एक बार फिर अपनी बात दुहराता हूँ—यदि आप सचमुच हवा बदलने की बात तय करें, तो कंजूसी के कारण हिचकिचाइए मत। ऐसा करना आत्महत्या के समान होगा और मनुष्य को आत्महत्या से ईश्वर भी नहीं बचा सकता। कृपया तुलसीबाबू तथा अन्य लोगों को मेरा नमस्कार कहिएगा। शुभ कामनाओं सहित,

आपका स्नेही

विवेकानन्द

स्वामीजी भारत से ३१ मई, १८९३ को रवाना हुए और उसी वर्ष ११ सितम्बर को वे विश्व-विख्यात हो गये जब उन्होंने विश्व धर्म सम्मेलन में अपने ऐतिहासिक व्याख्यान के द्वारा अमरीकी राष्ट्र का हृदय जीत लिया। उनकी अपूर्व सफलता के फलस्वरूप एक ओर उनके कृतज्ञ प्रशंसकों के द्वारा उनका गुणगान चारों ओर होने लगा, और दूसरी ओर विद्वेषी शक्तियों के द्वारा निन्दात्मक प्रतिक्रिया शुरू हो गयी। जब ये विद्वेषी शक्तियाँ स्वामीजी की ख्याति को नष्ट करने की पूरी कोशिश कर रही थीं, उनके कई अमरीकी मित्र उनके बचाव के लिए उठ खड़े हुए। उनमें से एक थे श्री मेरविन मैरी स्नेल, जो विश्व धर्म सम्मेलन के वैज्ञानिक वर्ग के अध्यक्ष थे। उन्होंने स्वामीजी का जोरदार समर्थन करते हुए ३० जनवरी १८९४ को इलाहाबाद से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक पत्र "पायनियर" के सम्पादक को एक लम्बा पत्र लिखा जो इस समाचार पत्र में ८ मार्च को प्रकाशित हुआ। इस तरह से हम देखते हैं कि एक बार फिर इलाहाबाद ने रामकृष्ण भाव-आन्दोलन के विकास काल में अपनी भूमिका अदा की।

जब स्वामीजी ने ४ जुलाई १९०२ को अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया, तो सारे देश को असहनीय आघात लगा। कई पत्र-पत्रिकाओं ने उनके सम्बन्ध में प्रशंसात्मक सम्पादकीय लिखे। इलाहाबाद के दैनिक पत्र "पायनियर" ने, जो ऐंग्लो इण्डियन समाज के द्वारा संचालित था और जिसने श्री स्नेल का पत्र ८ मार्च १८९४ को प्रकाशित किया था, १४ जुलाई १९०२ को एक मर्मस्पर्शी सम्पादकीय लिखा, जिसका एक अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

"पिछली शताब्दी के नवें दशक के प्रारम्भिक वर्षों के बंगाली नवयुवक नरेन्द्र नाथ दत्त, बी० ए० ही स्वामी विवेकानन्द हैं, जिन्होंने अपेक्षाकृत काफी कम समय में एक धार्मिक शिक्षक के रूप में लगभग विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त की। उन्होंने वेदान्त दर्शन को एक ऐसा रूप दिया जो वर्तमान युग के शिक्षित व्यक्ति के सामने प्रस्तुत किया जा सके।

उन्हें बहुत बड़ा श्रेय इस बात का है कि उन्होंने वेदान्त दर्शन के लिए अमरीकियों के हृदय जीतने में सफलता प्राप्त की। परन्तु यह कहना ही होगा कि अपनी सफलता के लिए वे काफी हद तक आदर्शवाद के प्रति लगभग छिपी हुई उस प्रशंसा भावना के ऋणी थे जो कि अमरीकी जनमानस में विद्यमान थी, बावजूद इसके कि वे वेदान्त दर्शन के एक शक्तिशाली शिक्षक थे। स्वामीजी ने अपने देहत्याग में प्राचीन भारत के उन योगियों का अनुकरण किया, जो शरीर के जीर्ण हो जाने पर केवल इच्छा शक्ति के द्वारा अपने प्राण त्याग सकते थे, ऐसी इच्छा शक्ति जिसे बल मिलता था श्वास प्रक्रिया पर उनकी यौगिक नियन्त्रण शक्ति से। इसे ही 'इच्छा मृत्यु' अर्थात् स्वेच्छा से मरना कहते हैं।"

इलाहाबाद के एक और प्रसिद्ध समाचारपत्र "कायस्थ समाचार" ने जुलाई १९०२ के अपने एक अंक में स्वामीजी के प्रति इस प्रकार श्रद्धांजलि अर्पित की :—

"हमारे इतिहास के वर्तमान सन्धिकाल में ऐसे सच्चे और निष्ठावान देश भक्त की मृत्यु वास्तव में एक अपूरणीय क्षति है, जिसे धैर्य के साथ सहन करना हमारे लिए कठिन है। १८९३ में शिकागो में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन के मंच पर उपस्थित होने से पहले उन्हें ख्याति प्राप्त नहीं हुई थी। यह विश्व धर्म सम्मेलन अमरीका की खोज की चतुश्शती के उपलक्ष्य में आयोजित भव्य अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी के सिलसिले में शिकागो नगर में आयोजित किया गया था। शिकागो के इस मंच पर हिन्दू संन्यासी के गेरुआ वस्त्रों में विवेकानन्द का आविर्भाव, उनके द्वारा वेदान्त दर्शन की स्पष्ट तथा विद्वतापूर्ण व्याख्या, अंग्रेजी भाषा की विशिष्टता और साधन सम्पन्नता पर उनका पूर्ण अधिकार तथा एक सार्वजनिक वक्ता के रूप में उनकी असाधारण निपुणता - इन सबने मिलकर "नई दुनिया" में तहलका मचा दिया और अमरीका जैसे देश में भी गहरी सनसनी पैदा कर दी।

'रायटर' (समाचार एजेन्सी) के द्वारा तार से प्रेषित समाचार ने भारतीय जनता को उनकी वापसी पर अत्यन्त उत्साहपूर्ण स्वागत के लिए प्रस्तुत कर दिया था, और कोलम्बो, जहाँ वे उतरे थे, वहाँ से उनकी अन्तिम मंजिल कलकत्ता तक की यात्रा अपूर्व तथा प्रचण्डतम उत्साह से परिपूर्ण दृश्यों के बीच होकर हुई थी।

…ऐसा है स्वर्गीय स्वामीजी के संक्षिप्त और सक्रिय जीवन का संक्षेप में सर्वेक्षण। यद्यपि उनका जीवन काल संक्षिप्त था और समाज-कल्याणकार्य के लिए उनके द्वारा बिताये गये वर्ष बहुत कम थे, फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने देशवासियों के ऊपर उनका नैतिक प्रभाव उनके कार्यकाल की संक्षिप्तता के अनुपात में अत्यधिक विशाल रहा है। इस लेख के सीमित दायरे के भीतर यह सम्भव नहीं है कि हम स्वामी जी के धार्मिक और दार्शनिक विचारों पर तथा उनके जीवन और चरित्रका अपने देशवासियों के ऊपर प्रभाव पर विचार-विमर्श कर सकें। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि स्वामीजी के निधन ने हमारे बीच से एक उच्चतम प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति तथा अद्वितीय व्यक्तित्व को हटा दिया है जिसकी हमें वर्तमान समय में परम आवश्यकता थी।"

विवेकानन्द ने कही कहानी

प्रव्राजिका श्यामाप्राणा

[नरेन्द्र नाथ दत्त में, जो बाद में विश्वविख्यात स्वामी विवेकानन्द बने, सजीव ढंग से कहानी कहने की बड़ी अद्भुत क्षमता थी; उनके अनुज महेन्द्रनाथ दत्त की बंगला पुस्तक 'स्वामी विवेकानन्देर बाल्यजीवनी' में नरेन्द्रनाथ द्वारा कही गयी ऐसी कई कहानियों का उल्लेख है। प्रस्तुत है श्री शारदा मठ, दक्षिणेश्वर, कलकत्ता की एक अन्तेवासिनी द्वारा उक्त पुस्तक से संकलित एवं अनूदित उनकी एक कहानी जिससे इस बात पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है कि स्वामी जी में बचपन से ही कितनी रसिकता भरी थी।

जब नरेन्द्रनाथ छोटे थे, उस समय की यह घटना है। उस समय वह बड़े-बड़े दो पलंगों को एक साथ मिलाकर बिस्तर बनाते और उस पर सोते थे। पहले नरेन्द्रनाथ, उनके बाजू में महेन्द्र नाथ एवं दो छोटी बहनें, फिर नानी और माँ — इस प्रकार सब सोया करते थे। सोने से पूर्व नरेन्द्रनाथ एक तकिये से अपना मुँह ढककर थोड़ी देर चुपचाप लेटे रहते थे। इस सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द जी ने स्वयं सारदानन्दजी को मठ में बताया था कि "सोने के समय बचपन से ही मैं अपनी आँखों के सामने ज्योतिबिन्दुओं को देखा करता था। कभी-कभी वे बिन्दु स्थिर रहते थे और कभी चंचल, इसलिए मैं तकिए में अपना मुँह ढककर सोता था।"

नरेन्द्रनाथ इसी तरह थोड़ी देर लेटे रहते। तब हम सब भाई बहन एक साथ चिल्ला उठते, "अरे भैया, हमें कहानी सुनाओ न" बस हमारा इतना कहना होता कि वह तकिए को दूर फेंक देते और विभिन्न प्रकार की आवाज निकालते हुए, अभिनय के साथ हमें बड़ी मजेदार कहानियाँ सुनाते। उनमें से एक कहानी इस प्रकार है :

एक भिन्न जाति की बुढ़िया थी। वह बकरी के एक छोटे से बच्चे का बड़े जतन से पालन करती थी। बुढ़िया उसको बहुत प्यार करती। वह उसे प्रत्येक दिन सुबह मैदान में चराने ले जाती और शाम को ले आती। एक दिन धूर्त स्वभाव के एक व्यक्ति ने उस बकरे को चुरा लिया और उसे काटकर खा गया। शाम को जब बुढ़िया बकरे को वापस लाने गयी, तो उसे बकरी का बच्चा न मिला। कुछ दूर एक आदमी खड़ा था। उससे बुढ़िया ने पूछा, "क्या तुमने मेरे बकरे को देखा है ?" उसने बुढ़िया को तुरन्त उत्तर दिया, "बहुत आश्चर्य की बात है कि तुम्हारा बकरा अब बकरा-योनि से छुटकारा पा गया है और वह पशु से मनुष्य जन्म पाकर काजी साहब बनकर इजलास में न्याय विचार कर रहा है। यह सुनकर बुढ़िया हाथ में रस्सी ले काजी के इजलास में गयी। दूर से काजी को देख वह सोचने लगी—"उस आदमी ने ठीक ही कहा। मेरा बकरा काले रंग का था और यह काजी भी काले रंग का है। मेरे बकरे के थोड़ी दाढ़ी थी और इसके भी वैसी ही दाढ़ी है।" बुढ़िया के मन में यह दृढ़ विश्वास हो गया कि उसका वही बकरा पशु-योनि से छूटकर काजी बन गया है। यह सोच बुढ़िया ने अपने हाथ को रस्सी का फन्दा बना लिया और काजी को दूर से

दिखाते हुए लगातार आवाज लगाने लगी —'अररर हिली हिली आ जा आ जा ।'' इजलास में बैठा काजी आश्चर्यचकित हो बुढ़िया की ओर देखने लगा और उसकी बात सुनने लगा। फिर उसने अपने नौकर से कहा जरा जाकर देखो तो, यह बुढ़िया दूर से क्यों रस्सी दिखाती है और बोलती है'' अररर हिली हिली आ जा, आ जा।'' तब नौकर ने उस बुढ़िया के पास जाकर पूछा— क्या बात है? बुढ़िया बोली, "तेरे काजी को सब बातें याद हैं या नहीं? मैंने कितने प्यार से उसे खिलाया-पिलाया है। उसके शरीर पर मैं कितना हाथ फेरती थी और मैदान में चराने ले जाती थी। क्या वह इतनी जल्दी सब भूल गया? अब तो काजी बन गया है और यह देख मैं भी खुश हूँ।''

बुढ़िया की बातों को सुनकर नौकर घबरा गया। उसने काजी के पास जाकर सारी बातें कह सुनायी। सुनकर काजी इजलास से उतर कर बुढ़िया के पास आया और उससे पूछा—"आप क्या चाहती हैं और क्या बोल रही हैं?'' जब काजी नजदीक आया तो बुढ़िया ने रस्सी का फन्दा झट काजी के गले में डाल दिया और कहने लगी, "अररर हिली आ जा आ जा हिली, अब अपने घर चलो। इन लोगों के पास तुम्हें रहने की कोई जरूरत नहीं है।'' यह कह वह काजी को अपनी ओर खींचने लगी। इस आकस्मिक घटना से काजी घबरा गया और आसपास के सभी लोग चिल्लाने लगे। तब बुढ़िया ने पूछा, "क्या तुम नहीं पहचान रहे हो? अरे, तुम तो मेरे वही प्यारे हिली हो। उस मैदान में रहने वाले एक व्यक्ति ने मुझे बताया है कि तुम बकरा योनि से छुटकारा पाकर आदमी बन गये हो और यहाँ काजी का काम कर रहे हों। यह तो सौभाग्य की बात है कि तुम काजी बन गये हो। इससे अच्छा और कुछ नहीं, मैं बहुत प्रसन्न हूँ, पर तुम मुझे इतनी जल्दी भूल गये यह मुझे अच्छा नहीं लगा।'' घटना बिस्तार से सुन काजी को बात समझ में आ गयी कि निश्चय ही उस दुष्ट आदमी ने बकरे को खा लिया है और बुढ़िया को फुसलाकर ऐसा समझा दिया है। तुरन्त ही काजी ने उस दुष्ट को पकड़ने का आदेश दिया और उसे कड़ा दण्ड दिया।

नरेन्द्रनाथ यह कहानी बताते समय "अररर हिली हिली आ जा आ जा'' यह आवाज ऐसी बढ़िया निकालते और मुँह का ऐसा हाव-भाव बनाते कि हम लोग हंसते-हंसते लोटपोट हो जाते।

(विवेक ज्योति से साभार)

सुख और दु:ख

मनुष्य जो सुख की आशा करता है, वह और कुछ नहीं, उसका जो साम्य भाव खो गया है, उसी को पाने का प्रयास है।

यदि दुःख-आपदा आये तो सोचो कि ईश्वर तुम्हारे साथ खेल कर रहे हैं और यही जानकर दुःख के भीतर भी परम सुख का अनुभव करो। जो आत्मा जितनी ही उन्नत है उसके सुख के पश्चात् उतनी ही शीघ्रता से दुःख आता है। हम चाहते हैं, सुख और दुःख के परे की अवस्था में जाना। इन दोनों के पीछे आत्मा विद्यमान है, जिसमें सुख भी नहीं है और दुःख भी नहीं है। सुख-दुःख अवस्था विशेष का नाम है और सभी अवस्थाएँ सदा परिवर्तनशील हैं; परन्तु आत्मा अपरिणामी, शान्तिस्वरूप एवं आनन्दमय है।

—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

हमारा अनुमान है कि उपर्युक्त अनुभूति के बाद वे गंगातट को छोड़कर श्रीक्षेत्र चले गये थे। शास्त्र में समाधि-लाभ के बाद साधक के लिए तीर्थदर्शन का विधान है।

जगन्नाथ क्षेत्र से लौटकर वे पुनः गंगातट पर निवास करने लगे। उन दिनों वे लीला ग्रन्थ (पुराण) आदि का पाठ सुनते दीख पड़ते थे। उन्होंने निरन्तर आठ महीने तक यह पाठ सुना था।

१८९७ ई० के दिसम्बर के अन्तिम दिनों में लाटू महाराज जयपुर से लौटकर बागबाजार में बलराम बोस के घर में निवास करने लगे। उस समय स्वामीजी (विवेकानन्द) ने उन्हें नीलाम्बर बाबू के उद्यान-भवन में स्थित मठ में रहने को कहा था, पर वे राजी नहीं हुए; बोले, "यहाँ तो मैं अच्छी तरह हूँ, तुम लोगों के यहाँ इतने लोगों के लिए जगह कैसे होगी ?"

हमने लाटू महाराज के मुख से सुना है—"विवेकानन्द भाई के उस देश से लौट आने पर नवगोपाल बाबू ने उनके हाथों अपने घर में ठाकुर की प्रतिष्ठा करायी। वहीं बैठकर स्वामीजी ने एक श्लोक* बना डाला था।

"उस बार ठाकुर का उत्सव दो जगह हुआ था। दक्षिणेश्वर का उत्सव किशोरी बाबू ने किया, हरमोहन बाबू ने उसके लिए चन्दा इकट्ठा किया। और दाँ लोगों की रासबाड़ी में जो उत्सव हुआ, उसका पूरा उत्तरदायित्व योगीन भाई तथा बूढ़े बाबा ने लिया। योगीन भाई ने उस बार बड़ा परिश्रम किया था। उत्सव के बाद ही वह बीमार पड़ गया था।

"योगीन भाई की अस्वस्थता की बात सुनकर मैं उन्हें देखने को गया था। मुझे देखकर योगीन भाई ने कहा, 'यह बीमारी तो अब ठीक होनेवाली नहीं है, पर डॉक्टर लोग क्या बोलते हैं जानता है ? कहते हैं अनार का रस पीओ, पूरी खाओ आदि-आदि। सालों को इतना भी होश नहीं कि संन्यासी-गण यह सब भला कहाँ से जुटायेंगे ! ये सब तो भोगियों के खाद्य हैं, उनके पास पैसा है, तैयार कर देने को लोग हैं। पर संन्यासी के भगवान् को छोड़ और है ही कौन ? जिनको भिक्षा माँगकर पेट भरना पड़ता है, उन्हें इतना सब शोभा नहीं देता। क्यों, ठीक है न ?

लाटू महाराज—ऐसा क्यों कहते हो भाई ? बीमार होने पर पथ्य तो लेना ही चाहिए; वह सब पथ्य है, उसे लेने में कोई दोष नहीं।

योगीन भाई—सो तो जानता हूँ, पर इतना सब जुटाएगा कौन ?

लाटू महाराज- क्यों ? हमीं लोगों से तो कह सकते थे, हम लोग सब कर देंगे।

योगीन भाई सो तो समझता हूँ। पर एक बात तेरे से पूछता हूँ। यह सब व्यवस्था आदि करने के लिए माँ उसे (अर्थात् योगीन स्वामी की पत्नी को) बुलवाने को कह रही हैं। तेरा क्या

---

* स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे ।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः ॥

मत है ? संन्यासी होकर भी क्या अन्त में पत्नी की सेवा लेनी होगी ? मैं इससे सहमत नहीं हो पा रहा हूँ। मेरा मन इसके लिए राजी नहीं होता।

लाटू महाराज—जब माताजी ही कह रही हैं, तो फिर क्या चिन्ता ? इससे कोई दोष नहीं होगा।

योगीन भाई— नहीं रे नहीं, तेरी समझ में नहीं आया। इस पर लोग क्या कहेंगे जानता है ? ठाकुर के सेवकगण संन्यास लेकर भी पत्नी की सेवा ग्रहण करते हैं। ऐसी बात उठने देना अच्छा नहीं।

लाटू महाराज—अरे, रहने दो लोगों की बातें। वे लोग तो कहेंगे ही। उनकी बातों से क्या आने-जानेवाला है ? यदि कोई अपने धर्म में सच्चा हो तो उन लोगों के हो-हल्ले से क्या होगा ? उनकी बातों पर भला कौन विश्वास करेगा ? तुम तो भाई माँ की मानकर उन्हें बुलवा लो।

योगीन भाई— जिससे भी पूछता हूँ वही यही बात कहता है। तू भी ऐसा ही बोल रहा है। किसी ने भी मेरी ओर से नहीं सोचा। तुम लोगों को और क्या कहूँ। मैं जानता हूँ कि यह बीमारी अब दूर न होगी, चाहे कोई कितना भी प्रयास करे या कितनी भी सेवा करे।

लाटू महाराज--नहीं भाई। ऐसी बात न कहो। उनकी इच्छा से सब होगा। यदि वे तुम्हें खींच ले जाना चाहें, तो हमारी क्या बिसात जो तुम्हें रोक रखें; और यदि वे ही अपने कार्य के लिए तुम्हें यहाँ रखना चाहें तो उनकी इच्छा में बाधक होना तुम्हारी क्षमता के परे है। पर क्यों यह सब सोच कर तुम अपने मन को दुखी करते हो ?

मेरी बात सुनकर जानते हो योगीन भाई ने क्या कहा ? — 'ठीक कहते हो भाई, उन्हीं की इच्छा पूर्ण हो ! मैं हूँ ही कौन ?'

"जब योगीन भाई की पत्नी उनकी सेवा करने को आ गयीं, तब मैं वहाँ से चला आया। योगीन भाई की बीमारी तो दिन पर दिन बढ़ती गयी। विवेकानन्द भाई ने विदेश से लौटकर उसको चिकित्सा की व्यवस्था कर दी। परन्तु उससे भी लाभ नहीं हुआ। तब उसे बाहर ले जाने की इच्छा व्यक्त की। पर योगीन भाई गया नहीं। आखिरकार निश्चित हुआ कि उसे सुबह-शाम नौका में बैठाकर गंगाजी में घुमाया जाएगा। किसी-किसी दिन मैं भी उस नाव में योगीन भाई के साथ घूमने जाता था। कितने ही प्रकार की बातें होतीं ! एक दिन तो विवेकानन्द भाई ने नाव से ही उसे मठ का भवन आदि दिखा दिया था।"

हमें जहाँ तक जानकारी मिल सकी है तदनुसार १८९८ ई० के अक्तूबर के अन्त में लाटू महाराज काकुड़गाछी के योगोद्यान में निवास करते थे। उसी काल में एक दिन स्वामीजी बीमार पड़े राम बाबू को देखने गये थे। राम बाबू तब उद्यान-भवन के दूमंजले के कमरे में रहा करते थे। लाटू महाराज के मुख से हमने सुना है—"राम बाबू के साथ स्वामीजी की बहुत सी बातें हुईं। उसी बीच एक बार राम बाबू बाहर जाने को उठने लगे। तब स्वामीजी ने उनके जूतों का जोड़ा आगे खिसका दिया। इसे देख राम बाबू कह उठे, 'अरे बिले ! क्या करता है ? क्या करता है ? तू संन्यासी है न, तुझे यह सब नहीं करना चाहिए !' इसके उत्तर में स्वामीजी बोले, 'रामदादा ! मैं तुम्हारा वही बिले हूँ। तुमने जो उपकार किया है, उसे क्या मैं भूल गया हूँ ?"—('सत्यकथा' ग्रन्थ से संग्रहित)।

उसी वर्ष के नवम्बर माह में कालीपूजा के दिन लाटू महाराज नीलाम्बर बाबू के उद्यान में स्थित मठ में दीख पड़े थे। उसी दिन श्री माताजी ने भी बेलुड़ मठ में पहली बार पदार्पण किया था।

इसी घटना के प्रसंग में उन्होंने एक भक्त को बताया था—"माताजी ने उस दिन मठ में जाकर अपने हाथ से ठाकुर की पूजा की। उस दिन मठ के सभी लोगों ने मिलकर उनके चरणों की धूलि

ली थी; अब भी मठ में उस धूलि की पूजा होती है। मठ का भवन देखकर माँ बड़ी प्रसन्न हुई थीं। वहीं से उन्होंने दक्षिणेश्वर मन्दिर का शिखर देखकर कहा था, 'वाह, अच्छा हुआ है! यहाँ आते ही वहाँ की बातें याद आएँगी।'"

हरिपर्वत ब्रह्मचारी ने बताया था—"नीलाम्बर बाबू के उद्यान में मैंने लाटू महाराज को दो-चार दिन देखा था। तब शरत् महाराज* विदेश से लौटकर मठ में ही निवास कर रहे थे। शरत् महाराज तब सब कुछ बड़े ही सुसम्बद्ध रीति से करते थे। जिस वस्तु के लिए जो स्थान नियत था, उसे वहीं रखते थे। मैं प्रायः ही देखता कि लाटू महाराज शरत् महाराज के कमरे में जाकर उनकी चीजें अस्त-व्यस्त कर देते। कभी उनकी पुस्तक बिस्तर के ऊपर रख आते, तो कभी स्याही की दावात मेज के एक किनारे छिपा देते। इसी प्रकार वे शरत् महाराज के साथ बालसुलभ विनोद किया करते थे। कभी-कभी देखता कि लाटू महाराज उनके शुभ्र बिस्तर पर अपने धूलभरे पाँवों के साथ चढ़कर उस पर लोटते हुए हँस रहे हैं। लाटू महाराज का यह आचरण देखकर कभी-कभी शरत् महाराज कहते, 'यह क्या हो रहा है भाई?' इस पर लाटू महाराज उत्तर देते, 'और क्या होगा? देख रहा हूँ कि तुम्हें वह बात याद भी है या नहीं।"—'कौन सी बात रे?'

—'इतने में ही भूल भी गये; भाई!'

लाटू महाराज की इस बात को सुनकर शरत् महाराज और चिन्तित हो जाते और तब वे उनसे 'वह बात' सुनने का हठ करने लगते। शरत् महाराज की इस बात पर लाटू महाराज प्रायः ही कहते, 'देख रहा हूँ कि उस देश से आकर तुम कितने साहब बन गये हो!' यह सुनकर शरत् महाराज हँसने लगते।

"और एक दिन की घटना भलीभाँति स्मरण है—मठ से नाव में बैठकर कहीं जाने का निमन्त्रण था। सब लोग एकत्र हो गये थे, केवल स्वामीजी और शरत् महाराज का आना बाकी था। स्वामीजी को मैदान से होकर आते देखकर नित्यानन्द महाराज थोड़े उच्च स्वर में बोले, 'बड़े साहब तो आ गये, अब छोटे साहब के आने से ही हुआ।' लाटू महाराज ने भी उस पर कोई बात कही, जिसे सुनकर स्वामीजी ने कहा, 'क्या कहते हो रे! बड़े साहब या छोटे साहब चाहे जो भी होऊँ, पर जान लेना कि हम अब भी तरुतल के संन्यासी हैं, यह बात भूले नहीं हैं।' स्वामीजी की यह बात सुनकर लाटू महाराज विस्मित रह गये।"

१८९८ ई० के दिसम्बर में जिस दिन बेलुड़ मठ की स्थापना का समारोह हुआ, उस दिन लाटू महाराज वहाँ गये थे। परवर्ती काल में उन्होंने एक भक्त को बताया था—"देखो, आचार्य होने के लिए आदमी पहचानने की क्षमता रहनी चाहिए। किसके द्वारा क्या कार्य होगा, यह न समझ पाने पर कोई भी आश्रम भलीभाँति नहीं चलाया जा सकता। विवेकानन्द भाई काम का आदमी देखते ही पहचान लेता था; किसके द्वारा क्या-क्या कार्य हो सकेगा, अच्छी तरह समझ जाता था। इसीलिए तो वह हरिप्रसन्न भाई को मठ में ले आया और उसे मठ का भवन बनाने का भार सौंप दिया। आठ महीने पहले जहाँ कीचड़ भरा था, वहीं उसने कैसा मठ तैयार कर दिया। उत्सव के दिन वहाँ सभी लोग गये। विवेकानन्द भाई अपने कन्धे पर रखकर (ठाकुर की अस्थियों से पूर्ण) कलश ले आया और स्वयं ही पूजा करने बैठ गया। पूजा हो जाने पर वह सबसे कहने लगा, 'आज से इस मठ में उन्हें (श्रीरामकृष्ण को) लाकर मैंने बैठा दिया। वे ही हमें चलायेंगे। देखना भाई! उन्हीं की इच्छानुसार तुम लोग चलना। वे पवित्रता, सरलता और उदारता पसन्द करते हैं। तुम लोग इन तीन चीजों की मर्यादा बनाये रखना। यहाँ पर सभी मतों का सभी भावों का सामंजस्य करना होगा, किसी को छोटा और किसी को बड़ा करने से नहीं होगा।"

*स्वामी सारदानन्द

उसी वर्ष दिसम्बर के मध्यकाल में लाटू महाराज भक्तपालक राम बाबू के घर थे। यह बात हमने राम बाबू की मँझली कन्या के मुख से सुनी है। उन्होंने और भी कहा था—"लाटू दादा ने अन्तिम चौबीस दिन (सत्रह दिन घर पर और सात दिन योगोद्यान में) पिताजी की क्या ही सेवा की थी ! पिताजी तो रात में सो नहीं पाते थे। रात में उनका कष्ट बढ़ जाता था और माँ वह कष्ट देख नहीं पाती थीं। इसीलिए लाटू दादा रात में माँ को पिताजी की सेवा नहीं करने देते थे, बीच-बीच में उन्हें धमकी देकर दूसरे कमरे में सोने को भेज देते थे और स्वयं ही रात भर पिताजी की सेवा करते थे। पिताजी को चौबीसों घण्टे पंखे की हवा की आवश्यकता थी, पंखे की हवा न रहने से उनका काम नहीं चलता था, अतः दिनरात कोई न कोई उन्हें हवा करता रहता था। रात में तो लाटू महाराज ही पंखा लेकर बैठे रहते थे और बीच-बीच में उसे काली दादा (स्वामी योगविनोद) के हाथ में दे देते थे। जिस दिन पिताजी ने योगोद्यान जाने की इच्छा व्यक्त की, उस दिन लाटू दादा ने कितना ही मना किया, पर उन्होंने किसी की बात न मानी। पिताजी की इच्छा सुनकर माँ तो रोने ही लगीं। तब लाटू दादा ने उन्हें कितनी सान्त्वना दी। २८ पौष को पिताजी योगोद्यान में गये और ४ माघ (१९ जनवरी १८९९ ई०) उनका देहत्याग हुआ। पिताजी के देहावसान के पहलेवाले दिन राखाल महाराज आये थे। उसके बहुत दिन बाद स्वामीजी भी हमारे घर आये। पिताजी के देहान्त के बाद भी लाटू दादा कुछ दिन हमारे घर (अर्थात् सिमला में मधु राय गली के मकान में) रहे। ५ फाल्गुन को योगोद्यान में पिताजी का भण्डारा हुआ। उस दिन लाटू दादा ने बड़ा परिश्रम किया था। उसके बाद वे जो गये तो फिर दो-चार महीने दिखे ही नहीं।" (क्रमशः)

विवेक शिखा—स्थायी कोष के दाता

क्र०	नाम		स्थान	राशि
१.	एक भक्तिमती महिला	—	इलाहाबाद	३,९९० रुपये
२.	एक शुभैषी	—	पुणे	२०० रुपये
३.	श्री एस० के० चक्रवर्ती	—	इलाहाबाद	२७ रुपये
४.	श्री पृथ्वीराज शर्मा	—	ठण्डी, राजस्थान	३०० रुपये
५.	श्री दीपक श्रीवास्तव	—	पटना (बिहार)	१०१ रुपये
६.	एक शुभ चिन्तक	—	इलाहाबाद	२५० रुपये
७.	भी० बी० उरकुडे	—	चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)	५० रुपये
८.	श्रीमती शान्ति देवी	—	इन्दौर (मध्य प्रदेश)	१०० रुपये
९.	श्री एस० डी० शर्मा	—	अहमदाबाद	३०१ रुपये
१०.	श्रीमती प्रभा भार्गव	—	बीकानेर (राजस्थान)	२०० रुपये
११.	श्री रामलायक सिंह	—	सम्होता (छपरा)	२५ रुपये
१२.	डा० एस पी० भार्गव	—	अजमेर	१०० रुपये
१३.	श्री राम छबिला सिंह	—	मुजफ्फरपुर	२५ रुपये
१४.	श्री निखिल शिवहरे	—	दमोह (म० प्र०)	१५१ रुपये
१५.	श्रीमती उषारानी कर्ण	—	सुरसंड, (सीतामढ़ी)	१०० रुपये
१६.	श्री पी० सी० सरकार	—	नरेन्द्रपुर (प० बं०)	१०० रुपये
१७.	एक भक्तिमती महिला	—	इलाहाबाद	१०१० रुपये
१८.	श्रीमती मीरा मित्रा	—	इलाहाबाद	२०१ रुपये
१९.	श्री गोपाल शं० तायवाडे	—	अमरावती (महाराष्ट्र)	१०० रुपये
२०.	श्री महादेव शि० गुंडावार	—	भद्रावती (महाराष्ट्र)	५० रुपये

विवेक चूड़ामणि

स्वामी वेदान्तानन्द

अनुवादक—डॉ० आशीष बनर्जी

स्वप्नेऽर्थशून्ये सृजति स्वशक्त्या
भोक्त्रादिविश्वं मन एव सर्वम् ।
तथैव जाग्रत्यपि नो विशेष-
स्तत्सर्वमेतन्मनसो विजृम्भणम् ॥१७०॥

स्वप्न दर्शन के समय बाह्यपदार्थ के न रहने पर भी मन ही अपनी शक्ति के द्वारा भोक्ता और भोग्य सहित सभी संसार की सृष्टि करता है। जाग्रत काल में दीखने वाला यह जगत भी इसी प्रकार मन की सृष्टि है। जाग्रत और स्वप्नकालीन सृष्टि में कोई भेद नहीं है। इस कारण उक्त दोनों सृष्टि ही मन का परिणाम मात्र है।

मन ही सब कुछ की सृष्टि करता है, मन के अतिरिक्त कोई बाह्य वस्तु नहीं है। स्वप्नकालीन मनोविलास की भाँति जाग्रतकालीन मनोविलास भी मिथ्या है।

आपत्ति—स्वप्न क्षणकालस्थायी है, एवं स्वप्न दृष्ट वस्तु समूह वास्तव में वर्तमान नहीं रहता इस कारण स्वप्न को तो मिथ्या कहा जा सकता है। परन्तु जाग्रतकाल तो दीर्घस्थायी एवं जाग्रत काल में दृष्ट या अनुभूत वस्तुएँ स्थायी होती हैं। अतः ये सब वस्तुएँ मिथ्या कैसे हो सकती हैं? जाग्रत काल में दृष्ट वस्तुओं की सत्यता प्रमाण के उपयोगी देशकाल आदि कारण समूह तो सर्वदा विद्यमान देखे जाते हैं।

उत्तर—जाग्रत काल में वर्तमान मन ही स्वप्न काल के क्षणिकत्व की कल्पना करता है। पुनः स्वप्नकाल में वह मन ही स्वप्न-दर्शन के समय उसके दीर्घत्व की कल्पना करता है। स्वप्नावस्था में काल के दीर्घत्व का अनुभव होता है; उस अवस्था में देश कालादि कारण समूहों का भी मन निर्माण करता है। अतः जाग्रत एवं स्वप्न अवस्थाओं में कोई अन्तर नहीं है। मन ही सभी कार्यों का उपादान है।

सुषुप्तिकाले मनसि प्रलीने
नैवास्ति किञ्चित्सकल प्रसिद्धेः ।
अतो मनः कल्पित एव पुंसः
संसार एतस्य न वस्तुतोऽस्ति ।१७१॥

सुषुप्ति के समय मन अविद्या में लीन होने पर जगत अथवा स्वप्नकाल में दृष्ट (विक्षेप उत्पादक) कोई वस्तु नहीं रह जाती। यह सभी के अनुभव का विषय है। अतः यह संसार पुरुष के मन की कल्पना मात्र है; वस्तुतः इसका कोई अस्तित्व नहीं है।१७१

अविद्या से मन की उत्पत्ति होती है, मन अविद्या में लीन होने पर बाह्य या आन्तर जगत के अस्तित्व की उपलब्धि नहीं होती। मन जब संकल्प नहीं करता, तब जीव का संसार चला जाता है। एकमात्र आत्म ज्ञान के द्वारा मन का संकल्प-विकल्प एवं अविद्या का सदैव नाश होता है।

वायुनाहनीयते मेघः पुनस्तेनैवः नीयते ।
मनसा कल्प्यते बन्धो मोक्षस्तेनैव कल्प्यते ॥१७२॥

वायु द्वारा जिस प्रकार मेघ लाया जाता है तथा वायु द्वारा ही दूर हटा दिया जाता है—उसी प्रकार बन्धन और मुक्ति दोनों ही मन के द्वारा कल्पित हैं।

आत्मा तो नित्यमुक्त है।

मन किस प्रकार से बन्धन और मुक्ति दोनों का कारण है?

देहादि सर्व विषये परिकल्प्य रागं
बध्नाति तेन पुरुषं पशुवद्गुणेन ।
वैरस्यमत्र विषवत्सुविधाय पश्चादेनं
विमोचयति तन्मन एव बन्धात् ॥१७३॥

मनोमय कोश ही देह, इन्द्रिय एवं रूप रसादि के प्रति आसक्ति उत्पादन करा कर, पशु को जिस प्रकार रस्सी बांधा जाता है उस प्रकार, आसक्ति रूप रज्जु द्वारा पुरुष को संसार में बांधे रखता है। यह मन ही पुनः दूसरे समय (जब सौभाग्यवश विवेक उत्पन्न होता है तब) विषयों के प्रति विषवत प्रतीति कराकर सभी भोग्य विषयों के प्रति वैराग्य उत्पन्न कराता है एवं इस पुरुष को संसार-बन्धन से मुक्त करा देता है। १७३

विष को विष जान लेने पर कोई भी उसे ग्रहण करने के लिए उतावला नहीं होता है।

तस्मान्मनः कारणमस्य जन्तो-
र्बन्धस्य मोक्षस्य च वा विधाने।
बन्धस्य हेतुर्मलिनं रजोगुणै-
र्मोक्षस्य शुद्धं विरजस्तमस्कम् ॥१७४॥

इस कारण मन ही मनुष्य के बन्धन एवं मुक्ति का कारण है। रजोगुण के द्वारा मलिन मन जीव के बन्धन का कारण है; और रजस्तमोगुणरहित शुद्ध मन मुक्ति का कारण है। १७४

रजोगुण से उत्पन्न कामलोभादि के द्वारा मन मलिन होकर जीव के बन्धन का कारण होता है।

मन की रजस्तमोरूपा मलिनता दूर करने का उपाय क्या है।

विवेक वैराग्य गुणातिरेकाच्-
छुद्धत्वमासाद्य मनो विमुक्त्यै।
भवत्यतो बुद्धिमतो मुमुक्षो-
स्ताभ्यां दृढाभ्यां भवितव्यमग्रे ॥१७५॥

विवेक और वैराग्य की वृद्धि होने पर मन शुद्ध होकर मनुष्य की मुक्ति का कारण होता है। अतः बुद्धिमान मुमुक्षु व्यक्ति को पहले दृढ़ विवेक और वैराग्यवान होने का प्रयत्न करना चाहिये। १७५

मनो नाम महाव्याघ्रो विषयारण्यभूमिषु।
चरत्यत्र न गच्छन्तु साधवो ये मुमुक्षवः ॥१७६॥

मन नामक महा व्याघ्र विषय रूपी अरण्यभूमि में विचरण करता रहता है। मुक्तिकामी साधक गण इस विषय रूपी अरण्य में प्रवेश न करें (विषय में आसक्त न होवें)। १७६

मनोमय कोश की भीषण व्याघ्र के साथ तुलना की गयी है। मुक्ति चाहने पर रूपरसादि-विषयों के प्रति आसक्ति को निश्चय ही त्यागना होगा।

मनः प्रसूते विषयानशेषान्
स्थूलात्मना सूक्ष्मतया च भोक्तुः।
शरीर वर्णाश्रम जाति भेदान्
गुणक्रियाहेतु फलानि नित्यम् ॥१७७॥

मन ही स्थूल एवं सूक्ष्म असंख्य-विषयसमूह एवं भोक्ता जीव के शरीर-वर्ण-आश्रम एवं जाति आदि विविध भेद और गुण, क्रिया, हेतु एवं फल समूह आदि की निरन्तर सृष्टि कर रहा है। १७७

गुण– विषय का अच्छा लगना, क्रिया-विषय प्राप्ति के लिए चेष्टा। हेतु– विषय प्राप्ति के विविध उपाय। फल—उपाय की सहायता से जो पा सकें उसकी चेष्टा करना। जन्म मरणादि भी फल के अन्तर्गत है।

मन के प्रभाव का वर्णन किया जा रहा है। मन केवल विषयों को उत्पन्न कर ही शान्त नहीं हो जाता वरन् जीव को विषय भोग में फंसा देता है:

असंगचिद्रूपममुं विमोह्य
देहेन्द्रिय प्राण गुणैर्निबद्ध्य।
अहंममेति भ्रमयत्यजस्रं
मनः स्वकृत्येषु फलोपभुक्तिषु ॥१७८॥

आत्मा स्वरूपतः संगरहित एवं चैतन्यस्वरूप (एवं अकर्ता और अभोक्ता) होने पर भी मन उसे मोहाच्छन्न कर एवं देह-इन्द्रिय-प्राण के बन्धन में बांधकर 'मैं' 'मेरा'-रूप अभिमान के साथ सुख-दुःखादि फल उपभोग में एवं मन के ही कर्म काम-संकल्पादि में सर्वदा लिप्त रखता है। १७८

विषय में आसक्ति के फलस्वरूप जीव बंधन में पड़ता है।

अध्यास जन्मादि दुःख का कारण है, और जो अध्यास है वहीं अविद्या है—यही शास्त्रों का उपदेश है। तब फिर उक्त श्लोक में मन को दुःख-भोग का कारण क्यों कहा गया ?

बैद्यनाथ च्यवनप्राश
अब पोलीजार में
उपलब्ध
स्फूर्ति
कफ खांसी नाशक
यौवन
दिमागी ताजगी
बलवर्द्धक
आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टानिक
कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?
प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं २०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।
बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१
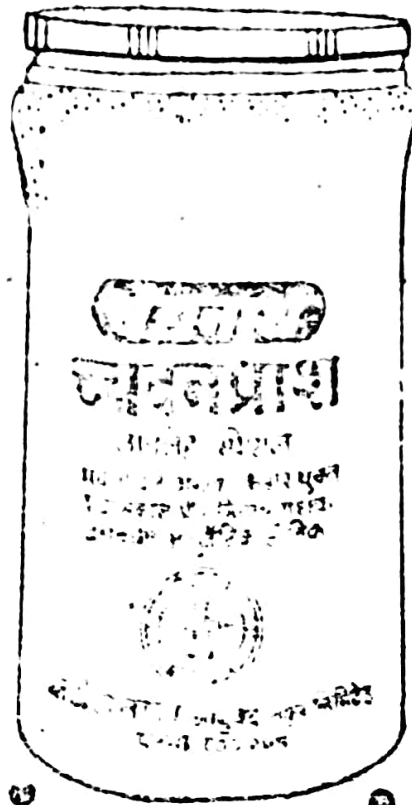
डाक पञ्जीयित संख्या – सी. एच. पी. – १४–८३

स्वामी विवेकानन्दकृत सम्पूर्ण साहित्य

पुस्तक	मूल्य
योग	
ज्ञानयोग	१४.००
राजयोग (पातञ्जल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित)	९.००
प्रेमयोग	५.००
कर्मयोग	६.००
भक्तियोग	४.००
ज्ञानयोग पर प्रवचन	२.००
सरल राजयोग	२.००
धर्म तथा अध्यात्म	
धर्मविज्ञान	५.००
धर्मतत्त्व	४.५०
धर्मरहस्य	३.००
हिन्दूधर्म	६.००
हिन्दूधर्म के पक्ष में	२.००
शिकागो वक्तृता	१.५०
नारदभक्तिसूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान	३.००
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता	४.५०
भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश	२.००
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)	[illegible]०
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य)	[illegible]०
वेदान्त	४.२५
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	३.५०
आत्मतत्त्व	३.५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	५.००
मरणोत्तर जीवन	१.५०
जीवनी	
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	६.००
मेरे गुरुदेव	२.५०
ईशदूत ईसा	१.००
पवहारी बाबा	२.००

पुस्तक	मूल्य
सम्भाषणात्मक	
विवेकानन्दजी के संग में	१३.००
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	५.००
विवेकानन्दजी के संस्मरण	५.००
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	३.००
विविध	
विवेकानन्द साहित्य संचयन (महत्त्वपूर्ण व्याख्यान, लेख, पत्र काव्य आदि का प्रातिनिधिक संचयन)	२५.००
,, (सस्ता संस्करण)	१०.००
पत्रावली — (धर्म, दर्शन, शिक्षा, समाज राष्ट्रोन्नति इत्यादि सम्बन्धी स्फूर्तिदायी पत्र)	२१.००
भारतीय व्याख्यान	२०.००
भारत का ऐतिहासिक क्रमविकास एवं अन्य प्रबन्ध	४.००
हमारा भारत	१.५०
वर्तमान भारत	२.००
नया भारत गढ़ो	२.५०
भारतीय नारी	४.००
जाति, संस्कृति और समाजवाद	४.००
शिक्षा	५.५०
सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार	३.५०
मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनाएँ	१.५०
विविध प्रसंग	५.००
चिन्तनीय —ें	४.००
परिव्रा[illegible] [illegible]कहानी)	४.५०
प्राच्य [illegible]चात्य	४.५०
युवकों [illegible] प्रति	६.००
विवेकानन्द– राष्ट्र को आह्वान (पॉकेट साइज)	१.२५
शक्तिदायी विचार (,,)	१.००
सूक्तियाँ एवं सुभाषित (,,)	१.००
मेरी समर-नीति (,,)	१.००
मेरा जीवन तथा ध्येय (,,)	१.००

प्रकाशक : रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर–४४००१२

श्रीमती गगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना — ४ में मुद्रित।